ISSN : 2582-6360

विश्व दीप दिव्य संदेश

मासिक शोध पत्रिका

वर्ष 29 | अंक 05-06 विक्रम संवत् 2082 मई-जून 2025 | पृष्ठ 58

संरक्षक : विश्वगुरु महामण्डलेश्वर परमहंस श्री स्वामी महेश्वरानन्दपुरीजी

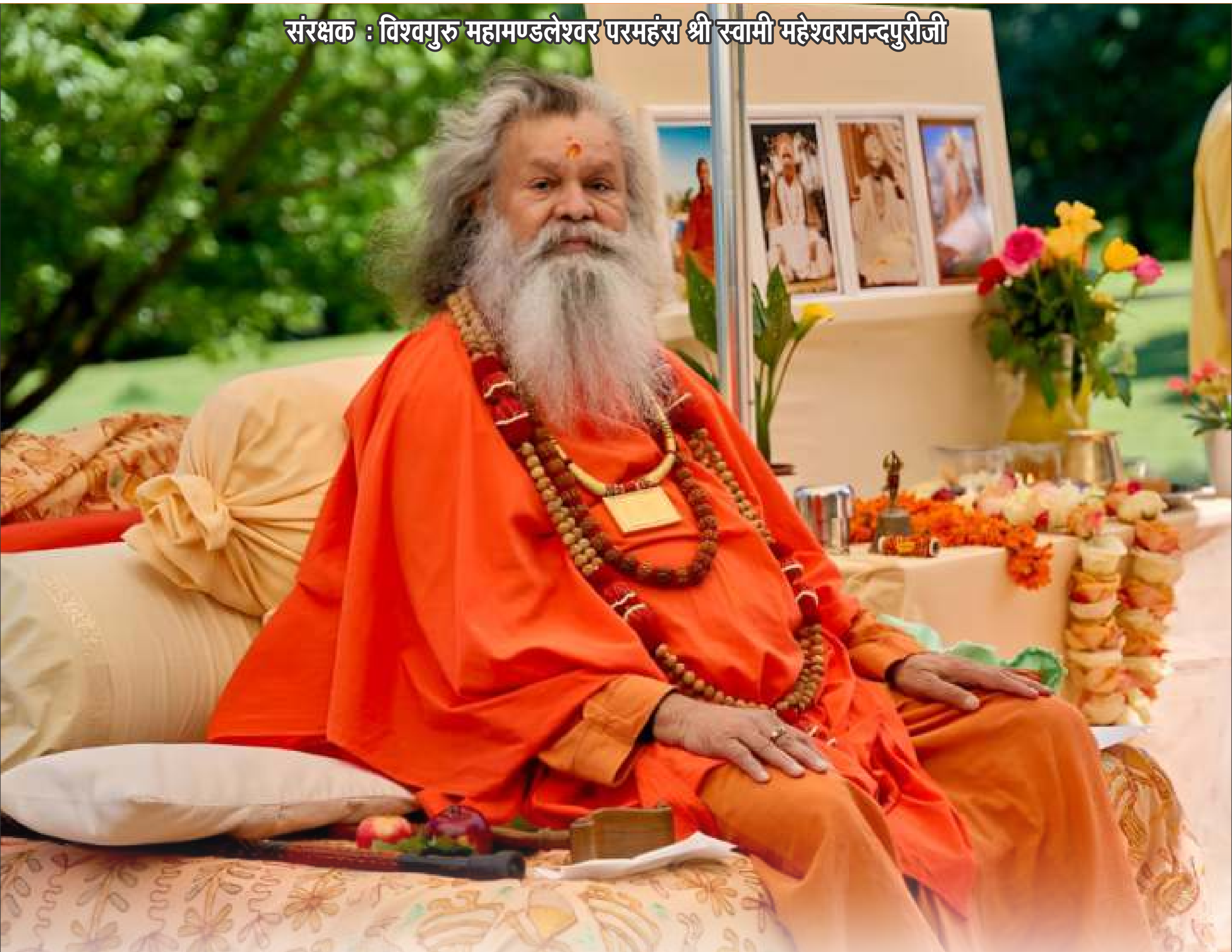

प्रकाशक

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान

(राजस्थान संस्कृत अकादमी एवं
जगद्गुरुरामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)
कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर

Narayan

ISSN : 2582-6360

विश्व दीप दिव्य संदेश

मासिक शोध पत्रिका

वर्ष 29 | अंक 05-06
विक्रम संवत् 2082
मई-जून 2025 | पृष्ठ 38

परामर्शदाता
प्रो. बनवारीलाल गौड़
प्रो. कैलाश चतुर्वेदी
डॉ. शीला डागा
प्रो. (डॉ.) गणेशीलाल सुथार

प्रधान सम्पादक
श्री सोहन लाल गर्ग
श्री एम.एल. गर्ग

सम्पादक
डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

सह-सम्पादक
डॉ. रघुवीर प्रसाद शर्मा
तिबोर कोकेनी
श्रीमती अन्या वुकादिन

- प्रमुख संरक्षक -
परम महासिद्ध अवतार श्री अलखपुरी जी
परम योगेश्वर स्वामी श्री देवपुरी जी

- प्रेरणास्रोत -
भगवान् श्री दीपनारायण महाप्रभुजी

- संस्थापक -
परमहंस स्वामी श्री माधवानन्द जी

- संरक्षक -
विश्वगुरु महामण्डलेश्वर परमहंस
श्री स्वामी महेश्वरानन्दपुरीजी

- प्रबन्ध सम्पादक -
महामण्डलेश्वर स्वामी ज्ञानेश्वर पुरी

प्रकाशक
विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान
(राजस्थान संस्कृत अकादमी एवं जगद्गुरुरामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)
कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर
Website : vgda.in | **Youtube :** www.youtube.com/c/vishwagurudeepashram | **E-mail :** jaipur@yogaindailylife.org

अनुक्रमणिका

1.	सम्पादकीय	डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा	3
2.	YOGA SUTRAS OF PATANJALI	Swami Maheshwaranandapuri	4
3.	चित्तवृत्तिनिरोधक योग से वेदनाओं का अवर्तन सम्भव	प्रो. वैद्य बनवारीलाल गौड डॉ. विश्वावसु गौड	7
4.	प्राचीनकाल से वर्तमान तक लिपि	डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा	15
5.	वैज्ञानिक संस्कृत वाङ्मय	देवर्षि कलानाथ शास्त्री	27
6.	वेदों में दीर्घ जीवन एवं बल वृद्धि के उदाहरण	डॉ. अजीत तिवारी	32
7.	आदिवैदिककाल व वैदिककाल में सृष्टि रचना	डा. रेशु तिवारी	41
8.	काव्यशास्त्रे रसपदस्यानेकार्थत्वम्	डॉ. मनीषा शर्मा	47
9.	राजगुरु रत्नाकर पौण्डरीक (महाशब्दे)	जयप्रकाश शर्मा	50
10.	निर्जला एकादशी का महत्व	मोहित बिस्सा	52
11.	राष्ट्रोपनिषत्	डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर	55

विश्वदीप दिव्य संदेश पत्रिका का वार्षिक सदस्यता शुल्क **800/- रूपये**

खाता संख्या : 5013053111
IFS Code : KKBK0003541

मुद्रण : **कन्ट्रोल पी**, जयपुर - मो. : 9549666600

सम्पादकीय

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित मासिक शोधपत्रिका का वर्ष 2025 का पंचम-षष्ठ अंक आपके करकमलों में अर्पित करते हुए अत्यधिक हर्ष का अनुभव हो रहा है। भारतीय धर्म-संस्कृति के शोधलेखों का यह संग्रह विद्वानों द्वारा सराहा जा रहा है। यह अंक महिला विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। विद्वानों द्वारा नियमित भेजे जा रहे शोधलेख हमारा मनोबल बढ़ा रहे हैं व पत्रिका के महत्त्व को भी आलोकित कर रहे हैं। पूर्व अंकों में सभी उच्चस्तरीय विद्वानों के लेख प्रकाशित हुए हैं।

इसमें सर्वप्रथम महामण्डलेश्वर स्वामी महेश्वरानन्दपुरीजी द्वारा लिखित YOGA SUTRAS OF PATANJALI शोध लेख में पातंजलयोगसूत्र के प्रतिपाद्य की आधुनिक सन्दर्भ में उपयोगिता दर्शायी गयी है। तत्पश्चात् प्रो. वैद्य बनवारीलाल गौड एवं डॉ. विश्वावसु गौड द्वारा लिखित **'चित्तवृत्तिनिरोधक योग से वेदनाओं का अवर्तन सम्भव'** नामक लेख में **चित्तवृत्तिनिरोधक योग की** अवधारणा को चरक संहिता और भगवद्गीता के माध्यम से समझाया है। तत्पश्चात् डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा द्वारा लिखित **'प्राचीनकाल से वर्तमान तक लिपि'** लेख में लिपि के इतिहास को प्राचीन संस्कृत ग्रंथों के माध्यम से स्पष्ट किया है। तत्पश्चात् देवर्षि कलानाथ शास्त्री द्वारा लिखित **'वैज्ञानिक संस्कृत वाङ्मय** नामक लेख में संस्कृत वाङ्मय को वैज्ञानिक रूप से स्पष्ट किया है। तत्पश्चात् डॉ. अजीत तिवारी द्वारा लिखित **'वेदों में दीर्घ जीवन एवं बल वृद्धि के उदाहरण'** नामक लेख में वेदों में दिये हुये दीर्घायु के उपाय एवं साधन तथा बलवृद्धि के उदाहरणों का वर्णन किया है। डा. रेशु तिवारी द्वारा लिखित **आदिवैदिककाल व वैदिककाल में सृष्टि रचना** लेख में वेदों के माध्यम से सृष्टि रचना को स्पष्ट किया है। डॉ. मनीषा शर्मा द्वारा लिखित **काव्यशास्त्रे रसपदस्यानेकार्थत्वम्** लेख में काव्यशास्त्र में रस के महत्व को स्पष्ट किया है। तत्पश्चात् जयप्रकाश शर्मा द्वारा लिखित राजगुरु रत्नाकर पौण्डरीक (महाशब्दे) लेख में महाराज सवाई जयसिंह द्वितीय के राजगुरु रत्नाकर पौण्डरीक जी जीवन परिचय दिया है। मोहित बिस्सा द्वारा लिखित **निर्जला एकादशी का महत्व** लेख में २४ एकादशियों में निर्जला एकादशी को श्रेष्ठ बताते हुये इसके महत्व को स्पष्ट किया है। अन्त में स्व. डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर के **'राष्ट्रोपनिषत्'** के कतिपय पद्य प्रकाशित किये गये हैं, जो गुरुशिष्यपरम्परा के गौरव को प्रदर्शित करने के साथ साथ आत्मचिन्तन की प्रेरणा प्रदान करने वाले हैं।

आशा है, सुधी पाठक इन्हें रुचिपूर्वक हृदयंगम करने में अपना उत्साह पूर्ववत् बनाये रखेंगे।

शुभकामनाओं सहित....

-डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

YOGA SUTRAS OF PATANJALI

A Guide to Self-knowledge

Mahamandleshwar Paramhans
Swami Maheshwaranandapuri

शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्स घरस्तत्प्रविभागसभयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम ॥ १७ ॥

17. śabdārtha-pratyayānām-itaretarādhyāsāt-saṅkarastat-pravibhāga-saṃyamāt-sarva-bhūta-ruta-jñānam

śabda – word
artha – goal, purpose
pratyaya – imagination, confidence, idea
itaretara – one thing and another
adhyāsa – putting on, setting up
saṅkaraḥ – confusion, confounding
tad – these
pravibhāga – division, segregation
saṃyama (saṃyamāt) – control
sarva – everything
bhūta – element, seien
druta – sound, shouting
jñāna – knowledge

When word, meaning and conception are mixed, confusion arises. Through *samyama*on the individual parts, the yogi can understand the language of all living beings.

When we hear a word and we know the language, the brain associates a certain meaning with it, which we understand. Otherwise, there is no meaning for us. Through *samyama,* however, the yogi gains a different, holistic approach. They grasp the meaning behind the words and can therefore communicate with every human being and also with the animals.

There are numerous legends and documented incidents of saints communicating with animals, such as St. Francis of Assisi, who spoke with birds and wolves. In Greece lived the monk Nektarios, who was also said to be able to converse with animals. Similarly, in the Lîlâ Amrit, the life story of BhagwânSrî Deep NârâyanMahâprabhujî, we read that his master, Yogeshwar SrîDevpurijî, talked with animals, even snakes, and that with SrîMahâprabhujî even wild animals became tame and trusting.

सभस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानम् ॥ १८ ॥

18. saṃskāra-sākṣāt-karaṇāt-pūrva-jāti-jñānam

saṃskāra – impression
sākṣāt – with one's own eyes, directly
karaṇa – making, effecting
pūrva – the front one
jāti – birth
jñāna – knowledge

Through *samyama*on the karmic imprints, knowledge about past lives arises.

A yogi who has the capacity for concentrated meditation can see their past lives, as well as those of others, as if in a film, by directing the focus of their consciousness to them. As explained earlier, *samskāras*are the accumulated experiences and impressions from the past. In the course of each birth, we generate *karmas* and thus *samskāras*. In each and every life, we take something with us that remains stored in the unconscious and subconscious mind. Through *samyama*on these *samskāras,* the meditator gets a clear picture of the imprints in the subconscious.

प्रत्ययस्यपरचित्तज्ञानम् ॥ १९ ॥

19. pratyayasya para-citta-jñānam

pratyaya – imagination, confidence, idea
para – following, subsequent
citta– the thinking, mind, thoughts

***Samyama*on the mind of a person enables insight into their way of thinking.**

Through *samyama,* the yogi can read the consciousness of others and understand what they are thinking. But to be able to read other people's thoughts, one must first become fully aware of one's own thoughts, learn to purify and control them.

In the Lîlâ Amrit, the life story of SrîMahâprabhujî, it is narrated how Mahâprabhujî said to a visitor, "I see you have written down 40 questions and brought them with you. You will receive forty answers – would you like to receive them internally or externally?"

The visitor replied, "Please answer me 20 internally and 20 externally." And so, it happened. In the dream Mahâprabhujî answered 20 questions and 20 answers he gave externally in words.

◆◆◆

चित्तवृत्तिनिरोधक योग से वेदनाओं का अवर्तन सम्भव

(म.म. राष्ट्रपति-सम्मानित) प्रो. वैद्य बनवारी लाल गौड़
पूर्व निदेशक - राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान जयपुर
पूर्व कुलपति - डॉ. एस.आर. राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय जोधपुर
एवं
डॉ. विश्वावसु गौड
बी.ए.एम. एस. (आयुर्वेदाचार्य)
आयुर्वेद-वाचस्पति (एम.डी. आयुर्वेद) असिस्टेंट प्रोफेसर, स्वस्थवृत्त विभाग
एम.जे.एफ. आयुर्वेद महाविद्यालय हाड़ोता, चौमूँ, जयपुर (राजस्थान)

प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृतयः॥ (योगसूत्र 1/6)

अर्थात् प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति – ये पाँच चित्त की वृत्तियाँ हैं।

1. **प्रमाण** –

प्रमाण वह वृत्ति है जिससे यथार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है। यह तीन प्रकार से प्राप्त होता है-

- **प्रत्यक्ष (Direct Perception)**
- **अनुमान (Inference)**
- **आगम (Scriptural testimony or reliable authority)**

प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि॥ (योगसूत्र 1.7:)

- इन्द्रियों द्वारा किसी वस्तु का प्रत्यक्ष अनुभव। जैसे- सूर्य को आकाश में चमकता हुआ देखते हैं यह प्रत्यक्ष ज्ञान है।

- किसी ज्ञात लक्षण के आधार पर, अदृष्ट वस्तु का ज्ञान होना अनुमान है। जैसे- जहाँ -जहाँ धुआँ है, वहाँ -वहाँ आग भी अवश्य होती है।

- योग्य, विश्वसनीय व्यक्ति (ऋषि, शास्त्र, गुरु आदि) के कथन के आधार पर प्राप्त ज्ञान आगम या आप्तोपदेश प्रमाण है। जैसे- शास्त्रों से यह ज्ञान प्राप्त होता है कि पुनर्जन्म होता है , यह प्रत्यक्ष या अनुमान से नहीं जाना जा सकता, परन्तु शास्त्र या गुरु के वचनों से जाना जाता है। (वेदों में बताया गया है कि आत्मा अमर है।)

2. विपर्यय –

विपर्यय वह वृत्ति है जिससे असत्य या मिथ्या ज्ञान (अयथार्थ ज्ञान) उत्पन्न होता है, जो वस्तु के स्वरूप के विपरीत होता है।

विपर्ययो मिथ्याज्ञानम् अतद्रूपप्रतिष्ठम्॥ (योगसूत्र 1/8)

अर्थात् विपर्यय वह मिथ्या ज्ञान है जो वस्तु के वास्तविक रूप के विपरीत होता है। जैसे- मृगतृष्णा में रेगिस्तान को जलयुक्त देखना।

3. विकल्प –

विकल्प वह वृत्ति है जो किसी वस्तु का नाम लेकर उसके वास्तविकता के विना ही कल्पना की जाती है ।

शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः॥ (योगसूत्र 1/9)

अर्थात् जो केवल शब्दज्ञान पर आधारित हो और जिसका कोई वस्तुरूप अस्तित्व न हो, वह विकल्प है (कल्पनात्मक ज्ञान) । जैसे- आकाशकुसुम (आकाश में फूल), जिसकी कोई सच्चाई नहीं।

4. निद्रा –

निद्रा वह अवस्था है जिसमें चित्त केवल अभाव का अनुभव करता है।

अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्राः॥ (योगसूत्र 1/10)

अर्थात् जो वृत्ति अभाव के ज्ञान पर आधारित हो, वह निद्रा है। निद्रा केवल जड़ अवस्था नहीं है, यह भी एक चित्तवृत्ति है, क्योंकि जागने पर व्यक्ति कहता है कि “मैं सोया था।”

5. स्मृति –

स्मृति वह वृत्ति है जो अनुभव की गई वस्तुओं को पुनः चित्त में उपस्थित करती है।

अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः॥ (योगसूत्र 1/11)

अर्थात् अनुभूत विषय का लोप नहीं होना स्मृति है। जैसे- पूर्व जन्म या बाल्यकाल की घटना का स्मरण होना।

चित्तवृत्तियाँ और आयुर्वेद-

1. प्रमाण और बुद्धि-

आयुर्वेद में प्रमाण अर्थात् यथार्थ ज्ञान को धृति, स्मृति, बुद्धि इत्यादि की शुद्धता पर आधारित माना गया है।

तत्त्वज्ञाने स्मृतिर्यस्य रजोमोहावृतात्मनः|
भ्रश्यते स स्मृतिभ्रंशः स्मर्तव्यं हि स्मृतौ स्थितम्|| (च.शा.1/101)

जिस व्यक्ति की आत्मा रजोगुण और मोह से आच्छन्न (आवृत) हो जाती है, उसकी तत्त्वज्ञान में स्थित स्मृति (आध्यात्मिक स्मरणशक्ति) भ्रष्ट हो जाती है वह स्मृतिभ्रंश है (और जब स्मृति भ्रष्ट हो जाती है, तब वह व्यक्ति उन तत्त्वों को भी भूल जाता है जिन्हें स्मरण रखना चाहिए), स्मृति में स्थित भाव या तत्त्व स्मरण रखने के योग्य होते हैं।

यह प्रमाणवृत्ति विशेषतः अनुमान और आगम पर आधारित निर्णयक्षमता और बुद्धि की विशुद्धता से जुड़ी है। अतः आयुर्वेदीय दृष्टिकोण में प्रमाणवृत्ति बुद्धिस्थ विवेक का कार्य है।

2. विपर्यय और प्रज्ञापराध (Intellectual Error)

विपर्यय वह वृत्ति है जो मिथ्या ज्ञान उत्पन्न करती है। आयुर्वेद में इस स्थिति को प्रज्ञापराध माना गया है –

धीधृतिस्मृतिविभ्रष्टः कर्म यत् कुरुतेऽशुभम्|
प्रज्ञापराधं तं विद्यात् सर्वदोषप्रकोपणम्|| (च.शा.1/102)

जो मनुष्य बुद्धि, धृति और स्मृति से च्युत होकर अशुभ (हानिकारक या अनुचित) कर्म करता है, उसे 'प्रज्ञापराध' कहा गया है; और उस प्रज्ञापराध को सभी दोषों (शारीरिक, मानसिक विकारों) को प्रकुपित करने वाला जानना चहिये।

धृति को 'नियमात्मिका' (नियन्त्रण में रखने वाली) इसलिए कहा गया है क्योंकि वह अपने स्वभाव से ही मन को अकरणीय (जो नहीं करना चाहिए) कार्यों में प्रवृत्त होने से रोकती है। इस कारण जब धृति मन को संयमित करने में असमर्थ हो जाती है, तब वह (धृति) अपने कर्तव्य से च्युत हो जाती है, यही इस सूत्र का तात्पर्य है।

यह वाक्य धृति (धैर्य, मानसिक स्थिरता) की भूमिका स्पष्ट करता है। धृति का स्वभाव यह है कि वह मन को अनुचित कर्मों से रोकती है और संयम में रखती है। लेकिन जब मन नियंत्रण में नहीं रहता और अनुचित कर्मों की ओर चल पड़ता है, तो यह माना जाता है कि धृति अपने धर्म से च्युत हो गई है अर्थात् वह अपनी नियामक भूमिका निभाने में असफल रही है।

यह कथन अध्यात्म, योग और आयुर्वेद के दृष्टिकोण से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, जहाँ मानसिक अनुशासन को स्वास्थ्य और धर्म के पालन की मूल धुरी माना गया है। अतः विपर्यय वृत्ति दोषयुक्त प्रज्ञा (प्रज्ञापराध) है।

3. विकल्प और विकृति-

विकल्प अर्थात् वस्तुशून्य कल्पना, आयुर्वेदिक दृष्टि से रजोगुण का उत्पाद है। अर्थात् मन की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ ही इसकी विकल्पशीलता हैं। अत्यधिक विकल्पधर्मिता चित्त को भ्रमित करती है। आयुर्वेद में यह मन की चपलता, रजोगुण और अविकसित विवेक से जुड़ी होती है।

4. निद्रा और तमोगुण-

निद्रा वृत्ति आयुर्वेद में तमोगुण का स्वाभाविक फल है।

तमोभवा श्लेष्मसमुद्भवा च मनःशरीरश्रमसम्भवा च।
आगन्तुकी व्याध्यनुवर्तिनी च रात्रिस्वभावप्रभवा च निद्रा।। (चरकसंहिता सू. 21.58):

अर्थात् निद्रा को ६ प्रकार का निर्दिष्ट किया गया है, यथा-

निद्रा (नींद) तामसिक प्रकृति से उत्पन्न होती है, कफदोष से उत्पन्न होती है, मन और शरीर की थकान से

उत्पन्न होती है, कभी-कभी आगंतुक कारणों से भी उत्पन्न होती है, कुछ रोगों के पीछे-पीछे चलने वाली (सहगामी) होती है (अर्थात कुछ व्याधियों में निद्रा एक लक्षण के रूप में होती है), और रात्रि के स्वाभाविक प्रभाव से भी उत्पन्न होती है।

यह ६ प्रकार की निद्रा हैं लेकिन इन सभी में तमोदोष सम्पृक्त रहता है । स्वाभाविक निद्रा स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है, परन्तु अज्ञानात्मक निद्रा या प्रमाद योगमार्ग में बाधक है।

पतञ्जलि और चरक-

कुछ विद्वान् पतञ्जलि एवं चरक को एक ही मानते हैं, यह पृथक् से विवेचन के योग्य विषय है| यहां तो केवल इतना ही विचारणीय विषय है कि पतञ्जलि का चित्तवृत्तिनिरोध और चरकसंहिता की मनोचिकित्सीय अवधारणाएँ एक-दूसरे की पूरक हैं।

- जहाँ योग शुद्ध मन, बुद्धि और चित्त के एकाग्र संयम को लक्ष्य करता है,
- वहीं आयुर्वेद इस चित्त की शुद्धता को स्वास्थ्य का अनिवार्य अंग मानता है।

आयुर्वेद में 'सत्त्वावजयचिकित्सा' और योग में 'अष्टाङ्गमार्ग' इन दोनों का अंतिम लक्ष्य चित्त को वृत्तिरहित, संतुलित, स्मृतिमान् और आत्मदर्शी बनाना है।

चरकसंहिता में योग की अवधारणा:

चरकसंहिता आयुर्वेद का एक प्रमुख ग्रन्थ है, इसमें चित्तशुद्धि, आत्मज्ञान और मनोनिग्रह जैसे विषयों पर गहन विवेचन किया गया है। योग के परिणाम और उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए आचार्य चरक कहते हैं कि-

योगे मोक्षे च सर्वासां वेदनानामवर्तनम् ।
मोक्षे निवृत्तिर्निःशेषा योगो मोक्षप्रवर्तकः॥ (च.शा. 1/137)

अर्थात् योग में तथा मोक्ष में सभी प्रकार की वेदनाओं (दुःखों) का न होना (अवर्तन) होता है। मोक्ष प्राप्ति के बाद उन सभी वेदनाओं से पूर्ण निवृत्ति होती है जबकि योग मोक्ष का प्रवर्तक होता है ।

इसका तात्पर्य यह है कि अष्टाङ्ग योग की साधना करते समय भी दुःख की निवृत्ति होती है लेकिन वह

अस्थाई होती है तथा इसके माध्यम से यदि मोक्ष की प्राप्ति होती है तो मोक्ष में सभी वेदनाओं की निवृत्ति निःशेष रूप से (समूल रूप से) हो जाती हैं। इससे यह सङ्केतित होता है कि योग में वेदनाओं की निवृत्ति अस्थाई होती है इस सम्बन्ध में चक्रपाणि कहते हैं कि-

मोक्ष आत्यन्तिकशरीराद्युच्छेदः। निःशेषेति न पुनर्भवति| एतेन, योगे निवृत्ता वेदना पुनर्भवतीति सूचयति । मोक्षप्रवर्तक इति मोक्षकारणम् । (चरक. शारीर. १/ १३७ चक्रपाणि)

अर्थात् मोक्ष का अर्थ है "शरीर आदि का पूर्णतः नाश" (आत्यन्तिक उच्छेद)। 'निःशेष' का तात्पर्य है — ऐसी वेदनायें जिनमें कुछ भी शेष न रहे, अर्थात् वे पुनः नहीं होती। इससे यह सङ्केत मिलता है कि योग के कारण वेदनाएँ (दुःख आदि) निवृत्त तो हो जाती हैं, लेकिन वे पुनः हो जाती हैं । मोक्षप्रवर्तक का तात्पर्य है मोक्ष का कारण । (मोक्ष ही ऐसा है जो पूर्ण रूप से वेदनाओं को समाप्त कर देता है, इसलिए योग तो केवल मोक्ष को प्राप्त करने वाला ही होता है)।

श्रीमद्भगवद्गीता में चित्तवृत्तिनिरोधः-

श्रीमद्भगवद्गीता में योग की जो परिभाषा मिलती है, वह भी चित्त की समत्व अवस्था को ही सर्वोपरि मानती है:

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।। (श्रीमद्भगवद्गीता 2/48)

अर्थात् हे धनञ्जय! फल की आसक्ति को त्याग कर सिद्धि और असिद्धि में सम हो कर (निष्पक्ष हो कर) योग में स्थित हुये (तुम) कर्मों को करो । (क्योंकि) समत्व को ही योग कहा जाता है। (यह समत्व "चित्त की तटस्थता" ही चित्तवृत्तियों का निरोध है।

चरकसंहिता में चित्तवृत्तिनिरोधक उपाय-

एतत्तदेकमयनं मुक्तैर्मोक्षस्य दर्शितम्।
तत्त्वस्मृतिबलं, येन गता न पुनरागताः।। (च.शा.1/150)

अर्थात् यह (तत्त्वज्ञानयुक्त) एकमात्र मार्ग (अयन) है जिसे मुक्त योगियों (जीवन्मुक्त योगियों) ने मोक्ष का

वास्तविक पथ बताया है। यह मार्ग तत्त्व की स्मृति (स्मरण) के बल से युक्त है, जिसके माध्यम से जो आत्माएँ चली गईं, वे फिर कभी (संसार में) लौटकर नहीं आईं (अपुनर्भव प्राप्त हो गया)।

निष्कर्ष-

वर्तमान युग में विभिन्न कारणों से मानसिक तनाव, चिन्ता, अवसाद की वृद्धि तथा धैर्य के अभाव को देखते हुए, चित्तवृत्तिनिरोधक योग को अपनाना समय की आवश्यकता है। यह न केवल चिकित्सा की दृष्टि से लाभप्रद है, अपितु जीवन के आध्यात्मिक, सामाजिक एवं व्यावसायिक क्षेत्रों में भी सन्तुलन प्रदान करता है। अतः चित्तवृत्तिनिरोधक योग के केवल प्रारम्भ करने मात्र को केवल साधना नहीं, अपितु जीवन की अनिवार्य आवश्यकता मानना श्रेष्ठ होगा।

आयुर्वेद कहता है कि रजोगुण और तमोगुण की वृद्धि चित्त को अशान्त करती है, जिससे भय, मोह, राग, द्वेष आदि उत्पन्न होते हैं। जबकि योगाभ्यास से सत्त्वगुण की वृद्धि होती है, जिससे श्रद्धा, शान्ति, सन्तोष, स्मृति और समाधि की स्थिति उत्पन्न होती है। चरकसंहिता के अनुसार शारीरिक मानसिक रोगों का मूल कारण 'प्रज्ञापराध' है अर्थात् बुद्धि और चित्त का अपविकसित अथवा दोषपूर्ण प्रयोग।

चित्तवृत्ति के निरोध की सम्पूर्णता को प्राप्त करना सबके वश की बात नहीं है फिर भी योग की प्रक्रिया को प्रारम्भ कर लेना भी मन के दुर्गुणों की निवृत्ति की ओर बढने का एक साङ्केतिक प्रयास है। निश्चित रूप से इसके कारण सात्त्विक भावों का उद्रेक और राजसिक तथा तामसिक भावों की निवृत्ति का प्रारम्भ होना भी एक शुभ सङ्केत है तथा परिणामस्वरूप भविष्य में मङ्गल की प्राप्ति के लिए आशा का भाव जागृत करता है। इसलिए उपनिषत्, चरकसंहिता एवं योगसूत्र में बताए गए यम-नियम आदि का परिपालन तथा सद्वृत्त और आचाररसायन की परिपालना निश्चित रूप से चित्त की वृत्तियों के निरोध की और ले जाने वाले मार्ग को प्रशस्त करते हैं ।

अतः जो योग करते हैं वे शुभ फल की प्राप्ति का प्रयास कर रहे हैं और जिन्होंने योग अभी प्रारम्भ नहीं किया है उन्हें इस मङ्गलकारी प्रवृत्ति की ओर बढ़ने के लिए भी यह 21 जून का अन्तरराष्ट्रीय योग दिवस आमन्त्रित करता है और प्रोत्साहित भी करता है, अतः जन-जन को योग करने की प्रवृत्ति अपने आप में विकसित करनी ही चाहिए, क्योंकि चित्तवृत्तिनिरोधक योग से वेदनाओं का अवर्तन सम्भव है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. पातञ्जलयोगसूत्र
2. श्रीमद्भगवद्गीता
3. कठोपनिषद्
4. चरकसंहिता (प्रथमखण्ड) – सान्वया हिन्द्यनुवादसहिता च, आयुर्वेददीपिकाव्याख्योपेता (एषणा-व्याख्यासहिता), प्रमुख-अन्वेषक और अनुवादक- प्रो. वैद्य बनवारी लाल गौड, राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ दिल्ली द्वारा प्रकाशित
5. चरकसंहिता (द्वितीय खण्ड) – सान्वया हिन्द्यनुवादसहिता च, आयुर्वेददीपिकाव्याख्योपेता (एषणा-व्याख्यासहिता), प्रमुख-अन्वेषक और अनुवादक- प्रो. वैद्य बनवारी लाल गौड, राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ दिल्ली द्वारा प्रकाशित
6. चरकसंहिता (तृतीय खण्ड) – सान्वया हिन्द्यनुवादसहिता च, आयुर्वेददीपिकाव्याख्योपेता (एषणा-व्याख्यासहिता), प्रमुख-अन्वेषक और अनुवादक- प्रो. वैद्य बनवारी लाल गौड, राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ दिल्ली द्वारा प्रकाशित
7. अष्टाङ्गहृदयम्, सूत्रस्थानम् – डॉ. विश्वावसु गौड़ द्वारा अनूदित, चौखम्भा ओरियण्टालिया, वाराणसी द्वारा प्रकाशित
8. स्वस्थवृत्त-विवेचन – लेखक: प्रो. बनवारीलाल गौड़ एवं डॉ. विश्वावसु गौड़, साक्षी पब्लिशिंग हाउस, जयपुर द्वारा प्रकाशित
9. अमरकोश – रामाश्रमी टीकासहित
10. संस्कृत-हिन्दी शब्दकोश – आप्टे
11. सांख्यकारिका (ईश्वरकृष्णकृत)
12. हठयोगप्रदीपिका – स्वात्मारामकृत
13. वेदान्तसार (सदानन्दकृत)

◆ ◆ ◆

प्राचीनकाल से वर्तमान तक लिपि

डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा
पाण्डुलिपि एवं लिपि विशेषज्ञ
अध्येता - पं. मधुसूदन ओझा साहित्य
समन्वयक - वैदिक हैरिटेज एवं पाण्डुलिपि शोध संस्थान
राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर

विश्व पुस्तकालय में वेद का कालक्रम में प्रथम स्थान सर्वसम्मत रूप से स्वीकार किया जाता है। यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि यह स्वीकार करते हुए भी लिपि तथा अङ्कों को इतना प्राचीन नहीं माना जाता है तथा इनका परवर्ती विकास मानकर कालज्ञान के ऐतिह्य अनुसन्धान में विश्व भर के मनीषी लगे हुए हैं एवं भिन्न-भिन्न स्थापनाओं से विषय की अनिर्णीत जटिलता का जाल सा बुन रहे हैं। ऐसा लगता है कि इसके सहवर्ती अन्यान्य भी कारण हैं ही किन्तु प्रमुख कारण वेद के वास्तविक स्वरूप से परिचित न होना है विशेषकर वेद के दूसरे प्रसिद्ध नाम श्रुति का यथार्थ भाव न समझना है।

श्रुति-स्मृति का स्वरूप

वेद के श्रुति नाम से विद्वानों में चिरकाल से एक भ्रान्त धारणा घर किये हुए है कि आरम्भ में वेदज्ञान की परम्परा मौखिक आधार पर चलती रही है अतः वेद को श्रुति कहा जाता था। परन्तु प्राच्यविद्या मनीषी पण्डित अनन्त शर्मा जी ने अपने अनुसंधान से सभी भ्रान्तियो को दूर कर दिया उनका कालानुसंधान नवीन आयाम् स्थापित करने में सहायक हो रहा है। चिरकाल पश्चात् जब लिपि का आविष्कार हुआ और वेद लिपिबद्ध किये गये तथापि पुराना नाम श्रुति जो वर्षों तक प्रसिद्ध रहा, चलता रहा, आज भी व्यवहार में है। भले ही आज पढ़ना-पढ़ाना पुस्तकों के माध्यम से है तथापि श्रुति नाम इस ऐतिह्य तथ्य का तो प्रमाण है ही कि वेदों के आविर्भाव से लेकर अत्यन्त परवर्ती काल तक इस देश में लिपि का अस्तित्व नहीं था।

वस्तुतः यह विचार उपयुक्त नहीं है। श्रुति स्मृति शब्दों का जो अर्थ लिया जा रहा है वह वास्तविक अर्थ नहीं है। श्रुति और स्मृति शब्द ज्ञान के प्रकार को बताने वाले शब्द हैं। अनुभूति का अनुभवकर्ता द्वारा प्रकाशन श्रुति है तथा श्रोता द्वारा उसका कथन स्मृति है।

सृष्टि वेद है। इसके धारक तत्त्वों का नाम धर्म है। धर्म का साक्षात्कार करने वाला अर्थात् धर्म का साक्षाद् द्रष्टा ऋषि है। इस अनुभूति का वाचिक प्रकाशन श्रुति है क्योंकि इसका अन्य व्यक्ति में संक्रमण श्रुति-श्रवण के माध्यम से हुआ है। इसी को पारिभाषिक रूप में कहा जाए तो स्वरूप या लक्षण होगा- **'द्रष्टुर्वाक्यं श्रुतिः'** अर्थात् द्रष्टा का वाक्य श्रुति है। ऐसे आप्त द्रष्टा की इस अनुभूति के लिए किसी अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं रहती है। यही श्रुति अथवा वेद की स्वतः प्रमाणता है।

श्रुति के विषय को श्रोता किसी अन्य को बताना चाहेगा तो उस समय उसका आधार स्मृति ही होगा। अतः श्रोता का कथन स्मृति है। इसे ही **'श्रोतुर्वाक्यं स्मृतिः'** अर्थात् श्रोता का वाक्य स्मृति है, के रूप में कहा गया है। यही कारण है कि स्मृति सदैव परतः प्रमाण है। श्रोता अर्थात् स्मृति रूप में श्रुति का वक्ता सदैव अपनी प्रामाणिकता के लिये यही कहता है कि अमुक ने मुझे ऐसा कहा था। स्पष्ट है कि श्रुति का मूल अनुभूति है तथा स्मृति का मूल वह श्रुति है जिसे श्रोता ने स्मृति में आत्मसात् कर लिया है। दोनों का विषय एक ही है किन्तु एक का आधार अनुभूति है दूसरे का आधार स्मृति है। अनुभूति का सम्बन्ध हृदय से तथा स्मृति का सम्बन्ध मस्तिष्क से है।

वर्तमान काल के उदाहरण से इसे स्पष्ट करना चाहें तो गुरुत्वाकर्षण और सापेक्षता को ले सकते हैं जिनके ऋषि क्रमशः न्यूटन और आईंस्टीन हैं। अपनी साक्षात्कृत अनुभूति को प्रकाशित करने वाले इनके वाक्य 'श्रुति' हैं, इस अभिव्यक्ति का आधार स्मृति नहीं अपितु दर्शन है। विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा इनके वाक्यों का व्याख्या सहित अथवा व्याख्या रहित संक्षिप्त अथवा व्यास कथन स्मृति है।

यही कारण है कि परवर्ती सभी प्रकार का सम्पूर्ण वाङ्मय स्मृति की कोटि में आता है, श्रुति केवल वेद है। हमें अपने मन मस्तिष्क से यह भ्रम निकाल देना चाहिये कि धर्म सम्बन्धी विधि विधानों के बताने वाले शास्त्र ही स्मृति हैं। आयुर्वेद, व्याकरण, रामायण, महाभारत आदि सभी को प्राचीन विद्वान् स्मृति कहते हैं। कुछ उद्धरण इसे स्पष्ट करने की दृष्टि से प्रस्तुत हैं-

आचार्य वाग्भट अष्टांग हृदय के सूत्रस्थान में आयुर्वेद के विषय में कहते हैं-

ब्रह्मा स्मृत्वायुषो वेदं, प्रजापतिमजिग्रहत्।
सोऽश्विनौ तौ सहस्राक्षं, सोऽत्रिपुत्रादिकान् मुनीन्॥
तेऽग्निवेशादिकान् ते तु, पृथक् तन्त्राणि चक्रिरे॥१/३

ब्रह्मा ने आयु के वेद का स्मरण कर प्रजापति दक्ष को उसे ग्रहण करवाया, प्रजापति ने अश्विनीकुमारों को दिया, उन्होंने यह ज्ञान इन्द्र को दिया। इन्द्र ने यह अत्रिपुत्र-आत्रेय आदि मुनियों को दिया, उन्होंने अग्निवेश आदि को दिया, इन लोगों ने पृथक् पृथक् तन्त्र बनाये।

वेदज्ञों के अलंकार महामनीषी भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में व्याकरण को अनेक बार स्मृति कहा है ।

साधुत्वज्ञानविषया सैषा व्याकरणस्मृतिः ।
अविच्छेदेन शिष्टानामिदं स्मृतिनिबन्धनम् ॥ (ब्रह्मकाण्ड१.१४२)

यह व्याकरण रूप स्मृति शब्दों के साधुत्व ज्ञान के लिये है। शिष्टों द्वारा इस स्मृति का निबन्धन एक अविच्छिन्न परम्परा से किया गया है।

भगवान् आद्य शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र और उपनिषदों के अपने भाष्यों में रामायण, महाभारत आदि सभी ग्रन्थों को सैकड़ों बार स्मृति कहा है। ब्रह्मसूत्रभाष्य से गीता के विषय में उनके दो तीन उद्धरण निम्नलिखित रूप में हैं:-

एतद्बद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात् कृतकृत्यश्च भारत (गीता १५.२०)
इति च स्मृतिः । १.१.४
स्मृतिरपि च 'स्थितप्रज्ञस्य का भाषा (गीता २.५४) इत्याद्या/१.१.४

इस प्रकार वेद (और आचार्य शंकर आदि की दृष्टि से ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि) तथा वेदेतर समस्त वाङ्मय क्रमशः श्रुति और स्मृति भागों में विभक्त है। यह भी स्पष्ट है कि वेद का श्रुति नाम अनुभूति वेदना-के साक्षात्कार के कथन के कारण है न कि सुनने-सुनाने की परम्परा के कारण है।

ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि सुनने सुनाने की परम्परा से श्रुति नाम की सत्ता मानने वालों ने कभी तर्क का आश्रय भी नहीं लिया। लिपि के अभाव में जैसे वैदिक संहिताओं का अध्ययन अध्यापन मौखिक होता था वैसे ही ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और वेदांगों का भी अध्ययन मौखिक ही होता था। इसी भाँति आयुर्वेद, शिल्पशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि सभी विषयों का भी गुरु परम्परा से मौखिक अध्ययन होता था तो केवल वेद को ही श्रुतिनाम क्यों दिया गया ? इन अन्य विषयों को श्रुति क्यों नहीं कहा गया? कण्ठस्थ तो सभी शास्त्रों को किया जाता था तथा कण्ठस्थ विषयों को ही आचार्य शिष्यों को पढ़ाता था, वेद भी कण्ठस्थ ही पढ़े-पढ़ाये जाते थे, ऐसी स्थिति में वेद को स्मृति क्यों नहीं कहा गया ? सभी शास्त्रों को छोड़कर धर्मशास्त्रों को ही स्मृति क्यों कहा जाता है? यदि कभी इस प्रकार का तार्किक चिन्तन होता तो स्पष्ट हो जाता कि श्रुति स्मृति नाम किसके और क्यों

रखे गये। भगवान् स्वायम्भुव मनु ने स्पष्ट कहा है-

यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्म वेद नेतरः। कुछ ऐसा भी प्रवाद प्रचलित है कि वेद के क्षेत्र में तर्क की गति नहीं है अतः वेदार्थ में तर्क नहीं करना चाहिये। यह निर्मूल मिथ्या विचार है। निरुक्त के प्रवक्ता महर्षि यास्क तर्क को ऋषि मानते हैं, अनूचान का तर्कसम्मत कथन पूर्णतया आर्ष होता है। निरुक्त में यह सुस्पष्ट कथन है-

मनुष्या वा ऋषिषूत्क्रामत्सु देवानब्रुवन् को न ऋषिर्भविष्यतीति। तेभ्य एतं तर्कमृषिं प्रायच्छन्। मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहमभ्यूढम्। तस्माद्यदेव किं चानूचानोऽभ्यूहत्यार्षं तद्भवति। १३.१२

देवयुग की समाप्ति पर जब ऋषि धीरे-धीरे धरती से उठते जा रहे थे तब मनुष्यों ने देवों से पूछा कि अब हमारा ऋषि क्रान्तदृष्टि सम्पन्न ज्ञानी कौन होगा। उन्होंने मनुष्यों को यह 'तर्क ऋषि' दिया। मन्त्रार्थ चिन्तन में सर्वदिक् ऊह करना ही तर्क है। अतः जो कुछ भी अनूचान षडंगवित् ऊहा द्वारा प्रकट करता है वह सब कुछ आर्ष होता है। वस्तुतः ऊहापोह समर्थ विद्वान् का चिन्तन ही शास्त्रतत्त्वदर्शन का मूल होता है, उद्धरणों की संख्या का अम्बार नहीं। दुर्भाग्य है कि वर्तमान में इसी का बाहुल्य है जो सूचीपाण्डित्य का विस्तारक है। उसी का फल है कि श्रुति से लिपि का सम्बन्ध विच्छेद कर दिया गया।

वेदमन्त्र आदि से ही लिपिबद्ध

वेदमन्त्रों का अध्ययन करने से इनसे लिपि के अस्तित्व का बोध ही नहीं होता अपि तु इनकी लिपिबद्धता का तथा लिपि के विभिन्न प्रकारों का भी स्पष्ट ज्ञान होता है एवं यह परवर्ती वाङ्मय से समर्थित भी होता है।

ऋग्वेद का एक मन्त्र है जो यास्क द्वारा निरुक्त में व्याख्यात भी है:-

उत त्वः पश्यन्न ददर्शवाच मुतत्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् ।
उतो त्वस्मै तन्वं विससे जायेव पत्य उशती सुवासाः ।। (१०.७१.४)

कोई एक वेदवाणी को देखता हुआ भी नहीं देखता है। कोई एक सुनता हुआ भी नहीं सुनता है। सुवासाः प्रकृति प्रत्यय आदि अवयव स्तम्भों से सुस्थित-उशती-वेदवाणी-एक के लिए अपने तनु को-शब्दात्मक बाह्य रूप तथा भावात्मक आन्तरिक स्वरूप अर्थ आदि मर्म विस्तार को पूरी तरह वैसे ही प्रकट कर देती है जैसे सुवासाः वेशभूषादि से अलंकृत पतिपरायणा विदुषी स्त्री पति के लिए कोई गोपन न रखकर सब कुछ प्रकट कर देती है। इसी से उसका जायात्व-जन्मदातृत्व-सफल है। यही वाणी का फलना-फूलना है।

इस मन्त्र से स्पष्ट है कि यह लिपिबद्ध वाणी का वर्णन है। इसके बिना वाणी का दर्शन सम्भव नहीं है। भाषा के इस लिखित रूप को देख तो सभी सकते हैं किन्तु यथार्थ दर्शन अर्थात् दर्शन का प्रयोजन अर्थज्ञान सबके लिए सम्भव नहीं है जब तक भाषा के लिपिगत बाह्य रूप से तथा भाषाज्ञानरूप तदपेक्षया आन्तर रूप से परिचय न हो।

यदि वैदिक विद्वान् देवनागरी लिपि से परिचित है किन्तु मलयालम, बंगला, रोमन ग्रन्थ और शारदा आदि से वह सर्वथा अपरिचित है तो सामने लिखे या मुद्रित उस वेदमन्त्र को भी यह वेदमन्त्र है इस रूप में नहीं जान सकेगा जिसका वह मर्मज्ञ है। यह देखते हुए भी न देखना है, इसे ही लोक आभाणक 'काला अक्षर भैंस बराबर' के द्वारा व्यक्त किया गया है।

मलयालम भाषा में पूर्ण निष्णात किन्तु संस्कृत और वेद से अपरिचित मलयालम लिपि में अभिव्यक्त वेद मन्त्र को अक्षर योजना कर पढ़ लेगा किन्तु पढ़कर भी वह यह जानने में असमर्थ ही रहेगा कि उसने क्या पढ़ा है। यह भी देखकर भी न देख पाता है। दोनों ही प्रकारों का सम्बन्ध लिपि से है।

मन्त्र का द्वितीय पाद ध्वनि के रूप को लेकर है। सुनते हुए भी न सुनना, श्रव्य सीमा में आने वाली ध्वनि अवश्य ही कानों में जायेगी, यह सुनना है। यदि भाषा के साथ परिचय नहीं है तो वह ध्वनि पद वाक्य का रूप नहीं ले सकेगी, ऐसा सुनना सुनना नहीं है यही भाषा का सुनते हुए भी न सुनना है।

श्रवण के साथ पठित दर्शन निर्विवाद रूप से भाषा के लिखित रूप का ही बोधक है। श्रवण के पूर्व दर्शन का स्थान लिपि की प्राथमिकता के महत्त्व का बोधक है। यह ध्यान रखा जाये कि दर्शन यहाँ विशुद्ध चाक्षुष सम्बन्ध को बता रहा है योग अथवा समाधि आदि का दर्शन यहाँ तनिक भी अभिप्रेत नहीं है। योगी का दर्शन अमोघ होता है अतः उसके दर्शन को अदर्शन कहना न केवल निरर्थक ही है अपितु मूढ़ता की पराकाष्ठा है जो वेदमन्त्र के विषय में सोचना भी महापाप है। मन्त्र का उत्तर भाग ज्ञानी की प्रशंसा में चरितार्थ है। जो अनेक लिपियों का वेत्ता है, वेदज्ञ है उसके लिए दर्शन और श्रवण मार्ग से वाणी गन्तव्य है उस बहुश्रुत के लिए कुछ भी गोपनीय नहीं है।

इस एक मन्त्र से वेद का अनेक लिपियों में लिपिबद्ध होना भी व्यञ्जित है। वेद जब यहाँ के जन समुदाय को विवाचाः और नाना धर्मा कहता है तो उस विवाचस्त्व को लिपिगत अनेकता के रूप में क्यों नहीं लिया जा सकता है? अथर्ववेद पृथिवी सूक्त का यह मन्त्र देखिये :-

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरपनस्फुरन्ती ।। (१२.१.४५)

यह पृथिवी भवन की भाँति अनेक वाक् और नाना धर्म से सम्पन्न जनसमूह को विविधरूपों में धारण करती है। शान्त और दृढ धेनु जैसी यह भूमि मेरे लिए द्रविण की धाराओं का दोहन करे।

यहाँ विवाचसम् में वि विविध और विशिष्ट अर्थ में है। वाक् यदि इन्द्रिय अर्थ में है तो उच्चारण के विभिन्न भेदों का ग्रहण होता है, कोई मधुर, कोई कर्कश, कोई मन्द, कोई उच्च, कोई स्पष्ट, कोई अस्पष्ट और कोई सर्वशुद्ध तो कोई साधारण रूप से बोलता है, एक तो यह विवाचाः का अभिप्राय है।

वाक् को वाणी अर्थात् भाषा के अर्थ में लें तो विवाचाः का अर्थ विविध भाषाओं को बोलने वाला होगा। एक ही भाषा में वक्ता के स्तर भेद से अनेक भेद हो सकते हैं जो नानाधर्मा पद से संकेतित हैं। दूसरा अर्थ एक ही भाषा के प्रान्त आदि के प्रभाव से विभिन्न रूप हो जाते हैं, इन्हें बोलने वाला जनसमुदाय । विवाचाः का तीसरा अर्थ है एक दूसरी से भिन्न अनेक भाषाएँ।

भाषा की इस प्रकार की अनेक विभिन्नताओं में लिपिकर्तृक विभिन्नता नहीं है इसमें क्या विनिगमना है?

वेद में लिपि के लेखन के प्रकार भी निर्दिष्ट हैं :-

..........काव्यं छन्दो अङ्कुपं छन्दोऽक्षरपङ्क्तिश्छन्दः पदपंक्तिश्छन्दो विष्टारपंक्तिश्छन्दः क्षुरश्छन्दो भ्रजश्छन्दः । (शुक्ल यजुर्वेद माध्य. सं. १५/४)

यह कण्डिकांश शुक्ल यजुर्वेद काण्व संहिता (१६.५-६) में भी इसी रूप में है वहाँ क्षुर और भ्रज को एक कर 'क्षुरोभ्रजश्छन्दः' के रूप में पढ़ा गया है। मैत्रायणी संहिता (२.८ (७).१८) में क्षुरोभृजश्छन्दः, काठक संहिता (१७.१८) में भी क्षुरोभ्रजश्छन्दः, कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता (४.३.१२.३३) में क्षुरोभृज्वान् छन्दः है।

यह सम्पूर्ण विश्व छन्दोवितान है, छन्दोबद्ध है। वेद ने इस विविधता का ज्ञान कराते हुए उपलक्षण रूप में अनेक वस्तुओं को छन्द कहा है। उसी क्रम में काव्य अङ्कुप अक्षरपंक्ति पद-पंक्ति विष्टार पंक्ति क्षुर भ्रज और क्षुरोभ्रज को छन्द बताया गया है। वेदमन्त्र प्रायः आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक, आधिलौकिक, आधियाज्ञिक आदि अनेक अर्थों को लिये हुए होते हैं। यदि इनके अन्य अर्थ प्राचीन और नवीन विद्वानों ने लिये हैं तो उनसे निषेध नहीं है किन्तु भाषा के संदर्भ में अक्षरपंक्ति, पद पंक्ति, विष्टारपंक्ति, क्षुरपंक्ति और भ्रज पंक्ति का सम्बन्ध लिपि से ही है।

अक्षर के अनेक अर्थ हैं। वाङ्मयार्णव में-

अक्षरस्तु शिवे विष्णौ खड्ङ्गे वेधस्यथाक्षरा।
वाच्यना क्ली विधौ धर्मे वर्णेऽम्बुतपसोः क्रतौ ।। १९

अक्षराख्ये सामभेदे खे मोक्षे मूलकारणे।
परमाणौ ब्रह्मणि च प्रणवे तु नृषण्डयोः ।। २०
त्रि निःक्षरे चाविनाशिन्यपिचापरिणामिनि ।

इन पद्यों द्वारा प्रायः गिना दिये गये हैं। पुल्लिंग में अक्षर शब्द शिव, विष्णु खड्ग और ब्रह्मा का नाम है। जब इसका प्रयोग स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग में होता है तो वाणी-भाषा के अर्थ में आता है। नपुंसक लिङ्ग में इसके अर्थ विधि, धर्म, वर्ण, जल, तप, यज्ञ, सामविशेष, आकाश, मोक्ष, मूलकारण, परमाणु और ब्रह्म हैं। प्रणव अर्थ में इसका प्रयोग पुल्लिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग में होता है। जब विशेषण के रूप में यह क्षरशून्य अविनाशी और अपरिणामी अर्थ में आता है तो विशेष्य के अनुसार यह तीनों लिङ्गों में प्रयुक्त होता है।

क्षर भाव का जिसमें अभाव हो वह अक्षर होता है इस अर्थ में यह वर्ण के ध्वनिगत रूप को कभी नहीं बताएगा। वागिन्द्रिय से उत्पन्न होते ही वर्ण या अक्षर तत्काल नष्ट हो जाता है यह क्षर भाव है अक्षर भाव नहीं। आकाश का गुण होने से इसकी वैज्ञानिक रूप में नित्यसत्ता भले ही हो, श्रव्य विषय न होने से व्यावहारिक सत्ता तो निश्चित ही नहीं रहती है। उसमें कालव्याप्ति नहीं है। अक्षर का अक्षरत्व लिपिगत रूप से ही है। अक्षर ध्वनियों को कालिक व्याप्ति देता है, प्रकट होने के साथ ही नष्ट हो जाने जैसी बात यहाँ नहीं है।

वैयाकरण अक्षर शब्द की व्युत्पत्ति भिन्न-भिन्न प्रवृत्ति निमित्त से भिन्न-भिन्न रूप में करते हैं। महाभाष्यकार पतञ्जलि - **अक्षरं न क्षरं विद्या दश्नोतेर्वा सरोऽक्षरम्। (१.२)** के रूप में प्रथम व्युत्पत्ति 'न क्षरम्-अक्षरम्' नञ् तत्पुरुष समासमूलक ही प्रस्तुत करते हैं जिससे उनका अभिप्राय लिपिगत रूप को ही प्राथमिकता देता प्रतीत होता है। होना भी चाहिये वे 'लिख अक्षर विन्यासे ' (६.८५) धातु से सुपरिचित हैं। सभी वैयाकरणों को यह धातु समान रूप से ग्राह्य है। अक्षर रूप में विन्यास करना, अक्षर का विन्यास करना लिख धातु के अर्थ हैं। देवी देवताओं के ध्यानगम्य रूप को स्थायी अंकित करना अक्षर रूप में विन्यास करना है यही कारण है कि देवशब्द का एक पर्यायवाचक लेख शब्द भी है। ध्वनि को अक्षरों की आकृति के माध्यम से अक्षर रूप देना लिपि के सन्दर्भ में लिख धातु का अर्थ स्पष्ट ही है। यह भाव महावैयाकरण भर्तृहरि ने भी व्यक्त किया है-

यत्र वाचो निमित्तानि चिह्नानीवाक्षरस्मृतेः ।
शब्दपूर्वेण योगेन भासन्ते प्रतिबिम्बवत् ।। (१.२०)

अक्षर स्मृति चिह्न का अर्थ लिपियाँ हैं। अक्षर रूप स्मृतिचिह्न तथा अक्षर-अनश्वर-स्मृति के लिए चिह्न दोनों ही अर्थ यहाँ अभीष्ट हैं।

महामुनि दूसरी व्युत्पत्ति भी व्याप्ति अर्थ को लेकर **'अश्नोतेर्वा सरोऽक्षरम्'** के रूप में देते हैं। इसका अर्थ है कि अक्ष धातु से सरन् प्रत्यय से अक्षर निष्पन्न होता है। स्वादिगण में 'अशूङ् व्याप्तौ' क्रयादिगण में 'अश भोजने' धातु है अतः **'अश्नुते अश्नाति वा अक्षरम्'** जो व्याप्ति रखता है, पालन करता है और खाता है वह है अक्षर। अक्षर काल व्याप्ति के साथ-साथ स्थान व्याप्ति भी रखता है। ध्वनि काकखग आदि उच्चारित रूप न काल व्याप्ति रखता है न स्थान व्याप्ति। ध्वन्यङ्कन में भी आधार टेप आदि पर अङ्कन स्थान और काल की व्याप्ति रखता है, वहाँ भी चिह्न ही हैं अपने ढंग के।

ऐसा नहीं है कि वैयाकरणों की अथवा महामुनि पतञ्जलि की यह व्युत्पत्ति नवीन है। ब्राह्मणों में प्रदत्त निर्वचनों में से कतिपय निरुक्त (१३.१२) में भगवान् यास्क ने दिये हैं :-

अक्षरं न क्षरति, न क्षीयते, वाक्-क्षयो भवति, वाचोऽक्ष इति वा।
अक्षो यानस्याञ्जनात् तत्प्रकृतीतरद् वर्तन सामान्याद् इति ।।

अक्षर क्षर भाव को प्राप्त नहीं होता है, क्षीण नहीं होता है, वाक् का क्षय-निवास या घर होता है, वाक् का अक्ष-धुरा होता है। जैसे अञ्जन भाव से यान का अक्ष अक्ष है वैसे ही यह-अक्षर समाम्नाय भी वाणी का अक्ष है, सम्पूर्ण वाक् इसी में प्रोत होती है।

जैसे अक्षर के विविध चरित पक्षों को लेकर प्राचीन मनीषियों ने भिन्न-भिन्न व्युत्पत्ति निर्वचन दिये हैं वैसे ही इसके स्वरूप के अन्य पक्षों को लेकर भी निर्वचन किये जा सकते हैं जैसे अक्षे रमते इति अक्षरम्, अक्ष में अर्थात् आँख में जो रमे आँखों को प्रिय लगे वह अक्ष-र अक्षर है। अक्षि की भाँति अक्ष भी नेत्रवाचक है। वाल्मीकि रामायण में नेत्र के लिए अक्ष का प्रयोग हुआ है :-

सर्वे तेऽनिमिषैरक्षै स्तमनुद्रुतचेतसः ।

इसका पदच्छेद है 'सर्वे ते अनिमिषैः अक्षैः तम् अनुद्रुतचेतसः' अब अर्थ स्पष्ट है कि राम के पीछे दौड़ते हुए चित्त वाले वे अयोध्या के नागरिक अपलक नयनों से उन्हें देख रहे थे। आँखों में रमना दृश्य वस्तु का ही सम्भव है फलतः अक्षर नाम वर्णसमाम्नाय के लिपिगत रूप का बोधक है।

अक्षि या नेत्र में रमने के लिए जिस मूर्तभाव की अपेक्षा है उस अर्थ को भी अक्षर शब्द देता है। पाणिनि पठित एक धातु 'अक्षू व्याप्तौ संघाते च' (१.४२५) है। अक्षति संघातीभावं प्राप्नोति इति अक्षरम्, संहनन-शरीर के अभाव वाला जो संहनन को प्राप्त कर लेता है वह है अक्षर, ध्वनि में संघात का अभाव है वह अमूर्त है, अक्षर उस अमूर्त का मूर्तीभाव है अतः अक्षर है। अक्ष धातु से उणादि का अरन् प्रत्यय लगने से अक्षर शब्द बनता है।

न केवल इतना ही अपि तु अक्षर शब्द वर्णमाला के संख्या और स्वरूप की भी इयत्ता निर्णीत करता है। अ उन समस्त वर्णों का ज्ञापक है जो एक ध्वनि को असंयुक्त रूप से बताते हैं। ये वर्ण अ से ह तक हैं। क्ष कोई पृथक् ध्वनि नहीं है अपितु क्ष का लिखने हेतु एक लिपि चिह्न मात्र है। यह 'क्ष' अक्षर सभी संयुक्त अक्षरों का ज्ञापक है। जैसे अ का प्रथम स्थान है वैसे ही क्ष का भी प्रथम स्थान है क्योंकि इसका प्रथम अक्षर क व्यञ्जनों में प्रथम है। इस प्रकार अ और क्ष आदि वर्ण होते हुए सभी असंयुक्त संयुक्त ध्वनियों के ग्राहक हैं इसलिए अक्ष शब्द सभी अक्षरों का बोधक संक्षिप्त नाम है। अक्ष शब्द से तद्धित का र प्रत्यय लगा कर बनाया गया 'अक्षर' शब्द वर्णमाला अर्थ देता है। तान्त्रिक वाङ्मय में इसी अर्थ में 'अक्षमाला' अथवा इसके पर्यायवाचक अक्षस्रक् जैसे शब्दों का प्रचुर प्रयोग है। मेरुतन्त्र कहता है-

'अकारादिक्षकारान्ता प्रोक्ता चाक्षरमालिका' (६/२९२)

वर्ण को केवल वर्णस्वरूप के रूप में प्रस्तुत करने के लिए 'कार' प्रत्यय लगा दिया जाता है। अकार अर्थात् अ, हकार ह, क्षकार क्ष, इस प्रकार इस श्लोकार्ध का अर्थ होता है अ से क्ष तक के अक्षरों की माला 'अक्षमाला' है। इस संज्ञा को ध्यान में रखने पर तन्त्रवाङ्मय के पदों का अर्थ समझ में आ जाता है। जैसे मेरुतन्त्र और शारदातिलक में वर्णेश्वरी के ध्यान का पद्य है-

अक्षस्रजं हरिणपोतमुदग्रटङ्कम्,
विद्यां करैरविरतं दधतीं त्रिनेत्राम्।
अर्द्धन्दु मौलिमरुणाभरविन्दवासां ।
वर्णेश्वरीं प्रणमत स्तनभारनम्राम् ।। (मे. ५/३२१, शा.५/३२)

यहाँ अक्षस्रज् अ से क्ष तक के अक्षरों की अक्षमाला है। इसी भाँति श्री पद्मपादाचार्य ने भी 'अक्षमाला-टंक पुस्तक धरां ध्यायेत्' कहा है। यहाँ तो स्पष्ट ही अक्षमाला शब्द है। कहीं छन्द की दृष्टि से इसे इस रूप में कहा गया है जहाँ स्वतः व्याख्या हो जाती है। भुवनेश्वरी स्तोत्र में सकलागमाचार्य चक्रवर्ती श्री पृथ्वीधराचार्य का पद्य है :-

'आदिक्षान्त विलास लालसतया तासां तुरीया तु या'

अ+आदि आदि, क्ष+अन्त क्षान्त, इस प्रकार आदि क्षान्त शब्द अकार से प्रारम्भ कर क्षकार तक के वर्षों वाली 'अक्षमाला' को व्याख्यात्मक रूप में बता रहा है।

आगम के ये विचार निगम मूलक ही हैं। परवर्ती काल की प्रवृत्ति नहीं हैं। अस्यवामीय सूक्त के मन्त्र का-

'अक्षरेण मिमते सप्तवाणीः ' (ऋ. १.१६४.२४)

अक्षर-अक्षमाला से सप्त-सर्पणशील-वाणियों को मानबद्ध किया जाता है निर्मित किया जाता है, स्पष्ट है कि लिपि आश विनाशी वाक को स्थायी रूप देती है। इसी सूक्त में अन्यत्र भी अक्षर विवेक है जो परमब्रह्मरूप अक्षर तत्त्व के साथ-साथ शब्द ब्रह्मरूप इस अक्षर तत्व का प्रतिपादक है।

अपने इन समस्त अर्थों को समाहित किया हुआ ही अक्षर शब्द 'अक्षरपंक्तिः छन्दः' भाग में है। अक्षर के साथ आया पंक्ति शब्द विचारणीय है। पंक्ति दृश्य और मूर्त पदार्थ की ही होती है। दन्तपंक्ति, वृक्षपंक्ति, बक पंक्ति (बगुलों की कतार) जैसे शब्द भाषा में खूब प्रचलित हैं। भावपंक्ति, विचारपंक्ति जैसे प्रयोग भाषा में प्रचलित नहीं हैं। वेद का अक्षरपंक्ति शब्द निश्चित ही अक्षरों के मूर्तरूप का समर्थक है जो लिपि बिना सम्भव नहीं है। रेखा या लेखा भी पंक्ति ही है किन्तु इनमें स्वल्प सा अर्थकृत भेद है। पंक्ति सान्तरा होती है, पंक्ति के सदस्य पृथक् पृथक् अन्तर के साथ एक सीध में होते हैं। रेखा या लेखा निरन्तरा-बिना अन्तर के होती है।

पदक्रम पद समूह पदव्यत्यय जैसे शब्द तो वाणी के उच्चारित रूप के साथ चल सकते हैं अतः चलते भी हैं किन्तु पदपंक्ति का प्रयोग सम्भव नहीं है अतः वाच्यरूप में इसका प्रयोग नहीं होता है। पदपंक्ति शब्द लिखित रूप को ही बताता है।

गद्य लेखन में तो पदपंक्तियों से सभी का परिचय है ही, यहाँ जो कुछ पढ़ने में आ रहा है पंक्ति रूप में ही है। पद्य में पद शब्द का अर्थ पाद या चरण होता है। साधारणतया छन्द चार चरणों के ही होते हैं, कुछ छन्द ५, ६ और अधिक भी चरणों के होते हैं। वर्णों या मात्रा की एक निश्चित संख्या पद की संरचना करती है। इस पद या पाद का ज्ञान उच्चारण में लय अथवा विराम से हो जाता है किन्तु लिखित रूप में स्पष्टता तभी रहती है जब एक पाद को एक पंक्ति में ही लिखा जाता है। इस रूप में लेखन 'पद पंक्ति' है, पदों की संख्या के अनुसार पंक्ति की संख्या पदपंक्ति का अभिप्राय है। मितव्ययता की दृष्टि से छन्द के पूरे पादों- अर्थात् पूरे छन्द को एक अथवा दो या तीन पंक्तियों में लिखा जा सकता है। यदि एक पंक्ति में लिखा गया है तो पाद की दृष्टि से तो छन्द चतुष्पद ही है भले

ही लेखन एक पंक्ति में हुआ हो, इसे एक पंक्ति छन्द नहीं कह सकते हैं।अतः पद और पंक्ति का अर्थगत अन्तर स्पष्ट है तथा पंक्ति शब्द छन्द के लिखित रूप को ही बताता है।

गद्य में भी व्याकरण प्रक्रिया वाक्यों की गणना करती है, लेखन प्रक्रिया में पंक्तियों की गणना भी होती है। एक वाक्य एक से अधिक पंक्तियों में भी लिखा जा सकता है। इसी भाँति कई वाक्य एक पंक्ति में भी लिखे जा सकते हैं। वाक्य में अन्तर नहीं होता है किन्तु लेखन में अन्तर पंक्तियों की संख्या की दृष्टि से हो सकता है। पत्र, जिस पर लिखा जा रहा है, छोटे आकार का हो तो लिखने में पंक्तियाँ अधिक होंगी, आकार बड़ा हो तो वही विषय कम पंक्तियों में ही समाविष्ट हो सकेगा। स्थूल और सूक्ष्म अक्षरों के विन्यास का अन्तर भी पंक्तियों की संख्या के अन्तर में कारण होगा।

इससे यह स्पष्ट है कि वाक्य अमूर्त भी हो सकता है तथा मूर्त भी, किन्तु पंक्ति सदैव मूर्त ही होती है। वेद का 'पदपंक्तिश्छन्दः' जैसा उल्लेख लिपि रूप के बिना सम्भव ही नहीं है।

यद्यपि ये उद्धरण लिपिसत्ता के प्रतिपादन में यथेष्ट हैं, तथापि अथर्ववेद से कुछ प्रत्यक्ष उल्लेख भी प्रस्तुत हैं जिनमें लिख धातु से निष्पन्न क्रिया तथा कृदन्त पदों का साक्षात् प्रयोग है। अथर्ववेद के बीसवें काण्ड में १२७ से १३६ तक १० सूक्त कुन्ताप सूक्त कहलाते हैं। इनमें से एक मन्त्र- 'क एषां कर्करी लिखत्' (१३२/८) है, संस्कृत का व्यावहारिक वाक्य रूप सन्धि विच्छेद बिना 'कः एषाम् कर्करीः अलिखत्' होगा। इसका अर्थ है किसने इन (अश्वों) के देह पर कर्करियाँ लिखी हैं। ऋग्वेद में भी खिल सूक्तों में यह मन्त्र है वहाँ कर्करिम् एक वचन का रूप है।

धातुओं के अनेक अर्थ होते हैं अतः यहाँ लिख धातु का अर्थ लिखना न लेकर और कुछ भी लिया जा सकता है जैसे आयुर्वेद में विशेषकर शल्य चिकित्सा के प्रसंग में लिख का अर्थ कुरेदना, खुरचना आदि में कोई लिया जाता है। आयुर्वेद के ऐसे कुछ स्थल द्रष्टव्य हैं :-

किलासानि सकुष्ठानि लिखेल्लेख्यानि बुद्धिमान् । (२५/५९)
लेखनच्छेदन स्वेदवमनैः शैष्मिकं जयेत्। (२३/१७१)

ये दोनों पद्यार्ध चरकसंहिता चिकित्सा स्थान के हैं। प्रथम का अर्थ है बुद्धिमान् चिकित्सक लेख्य अथवा लेखनीय किलास और कुष्ठ का लेखन करे। द्वितीय का अर्थ है- वैष्मिक विष को लेखन, छेदन, स्वेदन और वमन से जीते।

इसी भाँति चरक से पूर्ववर्ती ग्रन्थ सुश्रुत संहिता में भी लिख धातु का ऐसा ही प्रयोग है- 'धारा

लेखनानामर्धमासूरी' (सूत्रस्थान ८/१०) लेखन के लिए व्यवहार में आने वाले शस्त्रों या यन्त्रों की धार अर्धमासूरी हो।

लेख्याश्चतस्रोरोहिण्यः किलासमुपजिह्विका......२५/९ यहाँ लेखन योग्य रोगों की तालिका है, उसका यह प्रारम्भिक पद्यार्ध है जिसका भाव है कि चारों रोहिणियाँ किलास और उपजिह्विका लेख्य लेखन योग्य हैं।

शुक्ल यजुर्वेद माध्यन्दिनी संहिता में एक मन्त्र भाग है-

'द्यां मा लेखीः अन्तरिक्षं मा हिंसीः' (५.४३)

शतपथ ब्राह्मण पूर्व भाग का अर्थ करते हुए कहता है कि दिवं मा हिंसीः अर्थात् दिव् या द्यौ की हिंसा मत करो। यहाँ लिख खुरच खुरच कर नष्ट कर डालने के अर्थ में है, जैसा कि आजकल प्रदूषण के साधनों के बाहुल्य से हम करते जा रहे हैं।

इसी भाँति काव्यों में भी ऐसे प्रचुर प्रयोग हैं। इससे कोई निषेध नहीं है कि लिख के भिन्न-भिन्न अभिप्राय गर्भित अनेक अर्थ हैं किन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं है कि लिख के अक्षरविन्यास रूप अर्थ का इससे निषेध होता है। जैसे ये अर्थ हैं वैसे ही वह भी अतः कर्करीलेखन का अभिप्राय यही है कि कर्करी का आकार चित्रित करना।

इस अर्थ में यही एकमात्र प्रयोग स्थल मिलता तो बात जैसे तैसे मानी भी जाती कि यहाँ लिख अपने प्रसिद्ध अर्थ अङ्कन करने में नहीं है। द्यूत प्रसंग का एक मन्त्रार्ध देखिये-

'अजैषं त्वां संलिखित मजैषमुत संरुधम्।' अथर्व. ७.५०.५

भली-भाँति समान रूप से लिखित हे कृत! मैंने तुम्हें जीत लिया है जो तुम मेरे अवरोध रहे हो। कृत, त्रेता, द्वापर और कलि के समान आकार प्रकार रूप रंगवाले पाँसों में उनके कृत त्रेता आदि का ज्ञान जिससे होता है वह उन पर विद्यमान लेख से ही होता है।

जैसे अश्व पर कर्करी चिह्न लेख है वैसे ही गो पर मिथुन (जोड़े) का चिह्न लेख है, यह अथर्ववेद के-

'लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि' ६/१४१/२

इस मन्त्रार्ध से ज्ञात होता है। अतः इन मन्त्रांशों में लेख का ही विषय है, फलतः वेद में लिपि की सत्ता सिद्ध है।

◆◆◆

वैज्ञानिक संस्कृत वाङ्मय

देवर्षि कलानाथ शास्त्री
(राष्ट्रपति सम्मानित), प्रधान सम्पादक ''भारती''संस्कृत मासिक
पीठाचार्य, भाषामीमांसा एवं शास्त्रशोध पीठ - विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर
पूर्व अध्यक्ष - राजस्थान संस्कृत अकादमी
आधुनिक संस्कृत पीठ - जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय
पूर्व निदेशक - संस्कृत शिक्षा एवं भाषा विभाग, राजस्थान सरकार
सदस्य - संस्कृत आयोग, भारत सरकार

ज्ञान और विज्ञान, इन दो शब्दों के अन्तर पर संस्कृत में बहुत विचार मंथन हुआ है। अमरकोषकार अमरसिंह कहते हैं- **मोक्षे धीर्जानमन्यत्र विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः।** इस प्रकार एक मान्यता यह थी कि आध्यात्मिक ज्ञान को ज्ञान और ऐहलौकिक या भौतिक ज्ञान को विज्ञान कहा जाता है। गीता में **ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः** कह कर दोनों का भेद बताया गया है। विश्व के विद्वानों में अधिकांशतः यह धारणा पाई जाती है कि प्राचीन भारत में आध्यात्मिक ज्ञान पर तो बहुत लिखा गया है पर भौतिक विज्ञानों पर प्राचीन ऋषियों ने इतना ध्यान नहीं दिया। इस धारणा में सत्यांश अवश्य है पर इसका निष्कर्ष यह नहीं कि प्राचीन वाङ्मय में केवल पारलौकिक ज्ञान ही है, भौतिक ज्ञान नहीं। वस्तुतः वेदकाल से ही सृष्टि क्या है, कैसे उद्भूत हुई, जगत् और पदार्थ कैसे अस्तित्त्व में आये इत्यादि विषयों पर विमर्श के सूत्र मिलते हैं। जयपुर के विद्वान् समीक्षा चक्रवर्ती वेद- वाचस्पति मधुसूदन ओझा ने तो लगभग २०० ग्रन्थों द्वारा वेदों की विज्ञानवादी व्याख्या करते हुए यह सिद्ध करना चाहा कि **वेदों में भौतिक विज्ञानों की चरम उपलब्धियां सूत्र रूप में या प्रतीक के रूप में संकेतित हैं। उनके अनुसार ऋचाओं में प्राण, अग्नि, सोम, वाक्, रयि आदि शब्द सुपरिभाषित वैज्ञानिक संज्ञाएं हैं जिनके द्वारा समस्त पंचभौतिक तत्त्वों के पारस्परिक सम्बन्ध और क्रियाकलाप व्याख्यात किये गये हैं। रयि** शब्द **मैटर** या द्रव्य का वाचक है। प्राण शक्ति के उस सूक्षम रूप का प्रतीक है जो सर्वव्यापक है और सृष्टि के उद्विकास में कारण बनती है। कुछ विद्वान इसे **प्रोटोप्लाज्म** की अवधारणा बतलाते हैं। वाक् इसी का व्यक्त रूप है। प्रत्येक जीव और पदार्थ में प्राण शक्ति व्याप्त है। मन और वाक् भी। इसके दो रूप

हैं अग्नि और सोम। जलीय तत्त्व सोम है, रूक्ष और तीक्ष्ण तत्त्व अग्नि है। समस्त जगत् में ये दो तत्त्व व्याप्त हैं- **अग्नीषोमात्मकं जगत् ।**

आधुनिक विज्ञान के निष्कर्षों के अनुसार इनमें कौन-कौन सी अवधारणाएं खरी उतरती हैं और कौन सी नहीं, इसके विवेचन का यह अवसर नहीं है किन्तु वैदिक काल से ही इस प्रकार का विचार मंथन चलता रहा था इसका प्रमाण है यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण जिसमें इन वैदिक संज्ञाओं की परिभाषा इन्हीं आधारों पर करते हुये बतलाया गया है कि रूपकों की शैली में वैदिक ऋषियों ने इसी प्रकार का वैज्ञानिक चिन्तन ऋचाओं में निबद्ध किया है।

तैत्तिरीय आरण्यक में इस पर ऊहापोह मिलता है कि पृथिवी और समस्त अन्तरिक्षस्थ तारामण्डल किस शक्ति से टिके हुए हैं?

अनवर्णे इमे भूमी इयं चासौ च रोदसी।
किं स्विदत्रान्तराभूतं येनेमे विधृते उभे ।
विष्णुना विधृते भूमी इति वत्सस्य वेदना।

भूमण्डल और ब्रह्माण्ड के अन्य ग्रहादि किसी एक शक्ति द्वारा प्रसूत पारस्परिक आकर्षण से टिके हुए हैं यह वत्स ऋषि की अवधारणा थी। इस आकर्षण शक्ति को उन्होंने विष्णु नाम दिया था। आदित्य, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, आदि नाम जो बाद में पुराणों में जाकर केवल कहानियों के पात्र ही रह गये, ब्राह्मणों और आरण्यकों की व्याख्या के अनुसार विभिन्न तत्त्वों और वैज्ञानिक अवधारणाओं के प्रतीक हैं- इन्द्र वह आकाशीय वैद्युत तत्त्व है जिसे इलेक्ट्रिसिटी या प्रकाश कहा जा सकता है, वराह वायुमण्डल या **एटमास्फीयर** है जो पृथ्वी के चारों ओर व्याप्त है जिसने अपने दांत पर पृथ्वी को उठा रखा है यह प्रतीकात्मक कथा बाद में प्रचलित हुई, आदित्य सूर्यमण्डल के विभाग है। इस प्रकार वेद, ब्राह्मण और आरण्यक अपनी-अपनी दृष्टि से समस्त सृष्टि के भौतिक विश्लेषण का जो प्रयत्न करते हैं उसमें तत्कालीन वैज्ञानिक विवेचनात्मक प्रवृत्तियों की सारणियां स्पष्ट होती हैं।

उपनिषत्काल तक आते-आते यह विवेचन प्रक्रिया अधिक सूक्ष्म, रहस्यात्मक, आध्यात्मिक और गूढ़ होती गई और उसके साथ ही विचार की एक शाखा दार्शनिक चिन्तन की गहराइयों में विद्वानों को ले गई किन्तु दर्शन की अन्य शाखाओं में भौतिक तत्त्वों और प्रक्रियाओं पर वैज्ञानिक विमर्श भी चलता रहा। सांख्यदर्शन के

विद्वानों ने जिसके प्रवर्तक महामुनि कपिल माने जाते हैं, न्यायदर्शन के विचारकों ने जिसके प्रवर्तक गौतम और वैशेषिक के प्रितिपादकों ने जिसके प्रवर्तक कणाद माने जाते हैं- भौतिक तत्त्वों और क्रिया कलापों के विवेचन में जो दृष्टिकोण अपनाया है उसे बहुत अंशों में वेज्ञानिक कहा जा सकता है। सांख्य ने सृष्टि की उत्पत्ति का जो सिद्धान्त माना है उसमें यह स्पष्ट किया गया है कि सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों में वैषम्य या विचलन होने से सृष्टि का उद्विकास होता है। तमोगुण का प्रतीक है द्रव्य जो जड़ है और मैटर कहा जा सकता है।

रजोगुण का प्रतीक है ऊर्जा जिसे एनर्जी कहा जा सकता है। इनमें भी अलग एक सत्त्वगुण है जो चित् या चेतना को जन्म देता है जिसे **इन्टेलेक्ट** या **कांशसनेस** कहा जा सकता है। इनमें परस्पर अन्तः क्रिया द्वारा जो गति उत्पन्न होती है उसी से सृष्टि का उद्विकास होता है। इस विवेचन से सांख्य के दृष्टिकोण में वैज्ञानिक चिन्तन का प्रयत्न आभासित होता है। न्याय और वैशेषिक दर्शनकारों ने सत्तामीमांसा का जो दृष्टिकोण अपनाया वह अधिक वैज्ञानिक रुझान लिये हुये हैं। वैशेषिक दर्शन का तो विषय ही द्रव्य, गुण, कर्म आदि पदार्थों की व्याख्या करना है। इस विवेचन में जल, पृथ्वी, अग्नि और वायु इन द्रव्यों के परमाणु माने गये हैं जिनमें द्रव्यमान, संस्था, भार, तरलता, श्यानता, स्वाद, गन्ध, स्पर्श आदि गुण माने गयें हैं।

आकाश में शब्द तरंग प्रवाहित रहती है और वायु के माध्यम से ध्वनि कर्णगोचर होती है। परमाणुओं में संघटित होने का स्वभाव माना गया है जिससे वे पुंजीभूत होकर दूयणुक, त्र्यणुक, चतुरणुक आदि समूहों में परिवर्तित होते जोते हैं। इससे द्रव्य बनता है। ताप के प्रभाव से परमाणु-विघटन सम्भव माना गया है और उसी से स्वभाव या गुण में भी परिवर्तन माना गया है। वैशेषिक का एक सिद्धान्त है **पीलुपाक** जिसमें परमाणु का विघटन और परिवर्तन ताप से सम्भव बताया गया है। न्याय दर्शन इससे भिन्न **पिठर पाक** सिद्धान्त मानता है जिसमें ताप से परमाणु में परिवर्तन न मानकर केवल यह माना जाता है कि ऊष्मा के सूक्ष्म कण द्रव्य के पिंड में घुस कर वर्ण में परिवर्तन कर देते हैं।

वैशेषिक सूत्रों पर आचार्य प्रशस्तपाद ने जो भाष्य **पदार्थ-धर्म-संग्रह** नाम से लिखा है तथा इस भाष्य पर उदयनाचार्य ने **किरणावली** नाम की तथा श्रीधराचार्य ने न्यायकन्दली नाम की जो टीकाएं लिखी हैं- इन सबमे विवेचन की सरणि से यह स्पष्ट होता है कि भौतिक विज्ञान की स्वाभाविक जिज्ञासाओं की तह में जाने का प्रयत्न इन आचार्यों ने किया था। एक ही भूत के परमाणुओं से रासायनिक यौगिक बनाना संभव है। इन यौगिकों में जो अन्तर पाया जाता है वह अणुओं के संयोगों के भेद के कारण दिखलाई देता है। प्रशस्तपाद ने इसका भी विश्लेषण

किया है ऊष्मा के कारण दूध जब दही में परिवर्तित होता है तो यह परिवर्तन यौगिक अणुओं में न होकर इसका निर्माण करने वाले घटक परमाणुओं में होता है।

इसी प्रकार आस्तिक दर्शनों में भी जहां सत्तामीमांसा की गयी है वहां विचारकों ने भूत विज्ञान पर ऊहापोह किया है। नास्तिक दर्शनों का पूरा वाङ्मय आजकल उपलब्ध नहीं है किन्तु अनुमान किया जा सकता है कि निरीश्वरवादी दर्शनों ने जो सारी सृष्टि को पंचभूतमय ही मानते थे भौतिक सृष्टि और तत्त्वों का कितना स्पष्ट विवेचन किया होगा? चार्वाक और वृहस्पति दोनों का जो लोकायत दर्शन उपलब्ध होता है उसमें सारी सृष्टि को भौतिक बतलाकर जो व्यावहारिक विश्लेषण किया गया है उससे उनकी वैज्ञानिक दृष्टि स्पष्ट होती है। जैन दर्शन में भी पुद्गल का सिद्धान्त द्रव्य या अचेतन पदार्थ का विवेचन करते हुए यह समझाता है कि वह अणुओं के संयोग से पैदा होता है। सबसे छोटा अविभाज्य टुकड़ा अणु कहलाता है।

अणुओं के विभिन्न मात्राओं में पारस्परिक संयोजन द्वारा संसार के समस्त पदार्थ उत्पन्न होते हैं। अणुओं के संयोजन में आकर्षण शक्ति की भी अवधारणा **प्रज्ञापनोपांगसूत्र** में पाई जाती है। इसी प्रकार यद्यपि बौद्ध दर्शन की दो शाखायें माध्यमिक और योगाचार दृश्य जगत् की सत्ता ही नहीं मानीं किन्तु सौत्रांतिक शाखा और वैभाषिक शाखा जिसे सर्वास्तित्त्वादी भी कहा जाता है भौतिक पदार्थों की सत्ता मानती है। उसके अनुसार रूप अथवा प्रकृति, रंग, गंध, स्पर्श एवं रस इन तत्त्वों को मिलाकर बनती है। इस दर्शन में भी द्रव्य के परमाणु माने गये हैं। यद्यपि बौद्ध दर्शन में विज्ञान शब्द का अर्थ बिल्कुल उलटा है, अर्थात् वहां विज्ञान से तात्पर्य है चेतना या संवेदन, फिर भी पुराणों में भी सृष्टि का जो उद्विकास बताया गया है उसमें पहले जल की उत्पति, अंडों की उत्पत्ति, फिर छोटे जीवों की और उसके बाद धीरे-धीरे बड़े जीवों की उत्पत्ति का जो रूपक बांध गया है उससे यह अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है कि जीवन की उत्पति को लेकर एककोशय प्राणियों से लेकर मानव तक का तथा जलचर जीवों उभयचरों सरीसृपों आदि के क्रम से विभिन्न प्रजातियों के उद्विकास का ही वर्णन करना उनका अभीष्ट है।

प्रारम्भ से ही वैज्ञानिक ज्ञान को रूपक या कथा के रूप में रखने की जो प्रवृत्ति रही उसके कारण विज्ञान का गणितीय विवेचन उतना नहीं हो पाया किन्तु इस दिशा में भी आयुर्वेद के ग्रन्थों में द्रव्य का विवेचन करते हुए भौतिक विज्ञान के अनेक सिद्धान्त स्पष्ट किये गये हैं। चरक और सुश्रुत जो आयुर्वेद के अद्भुत विवेचक और जन्मदाता माने जाते हैं वे अपनी वैज्ञानिक दृष्टि केलिये विशेष उल्लेखनीय हैं। उनकी संहिताओं में जहाँ शरीर

विज्ञान, रसायन विज्ञान और वनस्पति विज्ञान के अनेक विषय स्पष्टता से विवेचित हैं वहीं स्थान-स्थान पर भौतिक विज्ञान की भी अन्तर्दृष्टि प्रकट होती है। उन्होंने द्रव्यों में सड़न पैदा होने के जो कारण और परिणाम बताये हैं वे आज के एनजाइम के सिद्धान्त के बहुत निकट लगते हैं। वाग्भट ने अपने ग्रंथ **अष्टांग-संग्रह** में भी द्रव्यों का अच्छा विवेचन किया है। **संस्कृत में गणित शास्त्र पर आश्चर्यजनक रूप से विपुल साहित्य उपलब्ध है।**

शून्य और अंकगणित के आविष्कारक तथा ज्यामिति, त्रिकोणमिति, बीज गणित आदि के प्रतिपादक आचार्यों ने ईसा की छठी शती से लेकर बीसवीं सदी तक संस्कृत में इस शास्त्र के ग्रन्थ लिखें हैं। इनमें वराहमिहिर, आर्यभट, ब्रह्मगुप्त, श्रीधर और भास्कराचार्य आदि तो प्रसिद्ध हैं ही, जयपुर के जगन्नाथ सम्राट और दुर्गाप्रसाद द्विवेदी आदि ने भी रेखागणित के संस्कृत ग्रन्थ लिखे हैं। इंजीनियरिंग से सम्बन्धित ज्ञान का प्रारम्भ वेदकालीन शुल्बसूत्रों से हुआ था जिनमें यज्ञवेदी आदि के बनाने की विधियाँ ज्यामिति के अनुसार बताई गई थीं। इसके बाद भरत के नाट्यशास्त्र में नाट्यशाला, रंगमंच आदि के निर्माण की विधियां विवेचित की गई। किले, महल, और मन्दिर आदि बनाने पर अनेक ग्रन्थ मध्यकाल में लिखे गये जिनमें मंडन, सूत्रधार आदि लेखकों तथा देवता-मूर्ति-पकरण, प्रासाद-मंडन, उद्धारे-धोरणी-कलानिधि आदि ग्रन्थों के नाम प्रसिद्ध हैं। भोजरचित **युक्ति-कल्पतरु** जैसे ग्रन्थों में नाव और जहाज बनाने की तथा भरद्वाजकृत **यंत्र-सर्वस्व** जैसे ग्रन्थों में विमान बनाने की जो विधियां हैं उनसे भी स्पष्ट होता है कि ऐसे ग्रन्थ लिखे जाते रहे थे चाहे आज उनकी पांडुलिपियां केवल प्राचीन ग्रन्थ संग्रहों को शोभा ही बढ़ाती हों। भरद्वाज का विमानशास्त्र तो प्रकाशित भी हो चुका है।

२० वीं शताब्दी के प्रारम्भ में जयपुर के **मधुसूदन ओझा** ने वेदों की जो वैज्ञानिक व्याख्या की है उसका उल्लेख किया जा चुका है। ओझा जी ने संस्कृत में भौतिक और रासायनिक विज्ञान उपलब्ध कराने का बहुत दिलचस्प और उल्लेखनीय प्रयत्न किया था। संस्कृत के छात्रों को विज्ञान में शिक्षित करने के उद्देश्य से उन्होंने एक पुस्तक लिखी थी जिसका शीर्षक था **वस्तु-समीक्षा ।** इसके चार भागों में पदार्थ विज्ञान वर्णित था जिसमें ताप, प्रकाश, बिजली आदि फिजिक्स के सिद्धान्तों का संस्कृत गद्य में विवेचन किया गया था। प्रथम भांग सन् १९०७ में ही प्रकाशित हुआ था जो आज भी उपलब्ध है।

◆ ◆ ◆

वेदों में दीर्घ जीवन एवं बल वृद्धि के उदाहरण

डॉ. अजीत तिवारी
एम. डी स्कॉलर
संहिता एवं मौलिक सिद्धांत विभाग
राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान जयपुर

चारों वेदों में दीर्घ आयु प्राप्ति हेतु से संबन्धित सैकड़ों मन्त्र हैं। इन मंत्रों में विभिन्न देवों से दीर्घायु की प्रार्थना की गई है। कुछ मंत्रों में दीर्घायु के उपायों का भी उल्लेख है। अनेक मंत्रों में प्रार्थना की गई है कि हम नीरोग रहते हुए सौ वर्ष या उससे भी अधिक समय तक देखें, सुनें, बोलें, जीवित रहें, प्रबुद्ध हों और उन्नति करते रहें।१

दीर्घायु की कामना को सौ वर्ष तक ही सीमित न रखकर ३०० वर्ष तक की आयु की कामना की गई है और कहा गया है कि जमदग्नि और कश्यप ऋषि ३०० वर्ष जीवित रहे। देवों और ऋषियों की आयु ३०० वर्ष तक की होती है, वह ३०० वर्ष की आयु हमें भी प्राप्त हो।२ अथर्ववेद के एक मंत्र में इससे भी आगे बढ़कर सहस्र वर्ष की आयु की कामना की गई है।३ साथ ही इन मंत्रों में दीर्घायु और सहस्रायु के कुछ उपाय भी बताए गए हैं

(१) **सुकृतः-** सत्कर्मों को करना,

(२) **आवृतो ब्रह्मणा वर्मणा -** ज्ञानरूपी कवच का आश्रय लेना,

(३) **ज्योतिषा वर्चसा च -** जीवन तेजस्वी और वर्चस्वी हो,

(४) **ऋतेन गुप्तः-** सत्य भाषण और सत्य व्यवहार का आश्रय लेना,

(५) **ऋतुभिश्च सर्वैः गुप्तः-** ऋतु के अनुसार जीवनचर्या,

(६) **मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युः-** मृत्यु या अल्पायु के कारण पाप या दुष्कर्म हैं, इनका परित्याग करना।

(७) **अग्निर्मा गोप्ता -** अग्नि रक्षक है। शारीरिक अग्नि को सदा प्रज्वलित रखना, उसे मन्द न होने देना।

(८) **उद्यन् सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान् -** उदय होता हुआ सूर्य मृत्यु के कारणों को नष्ट कर देता है, अतः उदय होते हुए सूर्य की किरणों को अपने शरीर पर पड़ने देना।

(९) **व्युच्छन्तीः उषसः-** उषाकाल या ब्राह्म मुहूर्त में उठना, धारणा, ध्यान आदि कार्य करना।

(१०) **पर्वता ध्रुवाः-** पर्वतों का आश्रय लेना, पर्वतों पर जाना और रहना तथा पर्वतों की स्वच्छ वायु का सेवन करना।

(११) **सहस्रं प्राणा मयि आ यतन्ताम् -** उपर्युक्त साधन मनुष्य को सौगुनी या हजारगुनी प्राणशक्ति देकर सहस्रायु बनाते हैं।४

दीर्घायु के उपाय- उपर्युक्त सहस्रायु के साधनों के अतिरिक्त अन्य उपाय भी दीर्घायु के बताए गए हैं। संक्षेप में वे उपाय ये हैं:-

१. **रजोगुण और तमोगुण से बचना -** मंत्र में कहा गया है कि दीर्घायु के लिए रजोगुण और तमोगुण में न फंसें। रजोगुण राग-द्वेषादि-मूलक है, अतः आयु को क्षीण करता है। तमोगुण आलस्य, प्रमाद, अकर्मण्यता और अविवेक का कारण है, अतः वह मनुष्य की जीवनी शक्ति को नष्ट करता है। दीर्घायु के लिए सत्त्वगुणप्रधान जीवन और सात्त्विक वृत्तियाँ आवश्यक हैं।५

२. **सत्य को अपनाना -** सत्यनिष्ठता, सत्य व्यवहार और सात्त्विक जीवन मृत्यु को दूर करने के सर्वोत्तम साधन हैं।६

३. **प्राण और अपान शक्ति का संयम -** अनेक मंत्रों में प्राण और अपान शक्ति के संयम को मृत्यु का नाशक और दीर्घायु का साधन बताया गया है।७

मित्र और वरुण शब्दों से भी प्राण और अपान शक्ति को पुष्ट करना दीर्घायु के लिए आवश्यक बताया गया है।८ प्राण और अपान शक्ति को पुष्ट करने का साधन प्राणायाम है।

४. **चिन्ता का त्याग -** चिन्ता मनुष्य की आधि-व्याधि को बढ़ाती है, अतः उसका परित्याग करें। दुःख आदि की बीती बातों को भुला दें।९

५. सूर्य और वायु से शक्ति प्राप्त करना सूर्य से दर्शन-शक्ति और वायु से प्राण-शक्ति प्राप्त करना दीर्घायु का साधन है।१० सूर्य की किरणों को दीर्घायु का दाता और मृत्यु से रक्षक बताया गया है।११

६. **अग्नि से प्राणशक्ति -** अग्नि प्राणशक्ति का दाता है।१२ शरीर में आग्नेय तत्त्वों को बढ़ाना और जठराग्नि को प्रदीप्त रखना शरीर को नीरोग एवं हृष्ट-पुष्ट बनाता है।

७. **दुर्व्यसनों और दुर्गुणों का परित्याग-** दीर्घायु के लिए दुर्गुणों और दुर्व्यसनों का परित्याग आवश्यक है। मंत्र में 'दुरित' शब्द के द्वारा दुर्गुणों और दुर्व्यसनों का ग्रहण है।१३ ये दोनों मनुष्य की जीवनी शक्ति को नष्ट करके उसे

अल्पायु बनाते हैं।

८. **ओषधि सेवन -** ओषधियों का महत्त्व बताया गया है कि ये मनुष्य को बड़े से बड़े रोगों और मृत्यु से बचाती हैं। १४ औषधियां रोगनाशक और शक्तिवर्धक है,इनमें सहस्रों प्रकार की शक्ति हैं।१५ दीर्घायु प्रदान करती हैं और शरीर को नवीन बना देती हैं१६

९. **सूर्य, चन्द्रमा और ओषधियाँ-** एक मंत्र में सूर्य, चन्द्रमा और ओषधियों को दीर्घायु का साधन बताया गया है। १७ उदय होता हुआ सूर्य सभी रोगों का नाशक है । चन्द्रमा ओषधियों का राजा है। सूर्य आग्नेय तत्त्वों को बढ़ाता है तो चन्द्रमा सोमीय गुणों का वर्धक है। चन्द्रमा शीतलता, सरसता, शान्ति और आह्लादकता प्रदान करता है । सोम्य गुणों से शान्ति, हर्ष और सद्भावों की वृद्धि होती है। ओषधियाँ सूर्य और चन्द्र के गुणों को ग्रहण करके अग्नि और सोम-तत्त्वों को पूर्ण करती हैं।

१०. **अज्ञान का त्याग और ज्योति का मार्ग अपनाना-** अज्ञानवश मनुष्य अपथ्य करता है और रोगग्रस्त होता है, अतः अज्ञान को दूर करके ज्योति का मार्ग अपनाना दीर्घायु का साधन बताया गया है।१८

इसका अभिप्राय यह है कि दीर्घायु के लिए स्वास्थ्य-संबन्धी नियमों का ज्ञान और उनका पालन अनिवार्य है।

११. **इच्छाशक्ति और आत्मिक बल -** इच्छाशक्ति और मनोबल मनुष्य को दीर्घायु बनाते हैं। आत्मिक शक्ति रोगों को नष्ट करके शतायु और पुष्ट बनाती है।१९ असुरों से विद्ध इन्द्र ने मनोबल (स्वधा) का आश्रय लेकर अपनी रक्षा की और मनोबल से आत्मिक शक्ति प्राप्त की । २०

१२. **शुद्ध जल का उपयोग -** शुद्ध वायु के तुल्य शुद्ध जल सर्वरोगनाशक है। वर्षा के जल को दिव्य जल कहा गया है और उसका गुण बताया गया है कि वह अमृत के तुल्य है और ओषधिरूप है । २१

१३. **मणि और रत्नधारण-** विविध मणियों और रत्नों को धारण करना दीर्घायु का साधन बताया गया है। अथर्ववेद में हिरण्य (सुवर्ण) तथा जंगिड आदि मणियों को सर्वरोगनिवारक एवं दीर्घायु का साधक कहा गया है। २२

दीर्घायु के साधन

अथर्ववेद में अनेक सूक्त हैं, जिनमें दीर्घ आयु की प्रार्थनाएँ की गई हैं। इनमें आयुवृद्धि के कतिपय साधनों का भी उल्लेख है। चारों वेदों में प्राकृतिक चिकित्सा और प्रकृति के सदुपयोग को दीर्घायु का सर्वोत्तम साधना बताया गया है। सूर्य की किरणों का सेवन, शुद्ध वायु में रहना और प्राणायाम आदि द्वारा शुद्ध वायु अपने अन्दर लेना, यज्ञ और अग्नि को अपनाना, शुद्ध जल का उचित मात्रा में प्रयोग आदि से शरीर स्वस्थ रहता है और दीर्घायु प्राप्त होती

है। २३ चिन्ताओं का त्याग दीर्घायु का उत्तम साधन है। बीती बातों को भुला देना चाहिए।२४ मन को पवित्र रखने, सात्त्विक विचारों को अपनाने और सत्त्वगुणों के समावेश से आयु बढ़ती है । राजस और तामस विचार आयु को क्षीण करते हैं२५ सत्य बोलना, सत्यव्यवहार और सत्यनिष्ठा से जीवन की रक्षा होती है। २६ पवित्र एवं सात्त्विक अन्न खाने से दीर्घायु की प्राप्ति होती है। अपवित्र या विषैला अन्न आयु को क्षीण करता है । २७ दीर्घायु के लिए आवश्यक है कि मनुष्य स्वावलम्बी और पुरुषार्थी हो २८ शारीरिक स्वस्थता, नीरोगता, शरीर को हृष्ट-पुष्ट रखना और अपने पुरुषार्थ पर निर्भर रहना मनुष्य को शतायु बनाते हैं|२९ अथर्ववेद का कथन है कि ओषधियों में और जल में दैवी शक्ति है। इनके ठीक सेवन से मनुष्य शतायु होता है|३० ओषधियों में सोमीय तत्त्व है। ये मरणासन्न व्यक्ति को भी मृत्यु से बचाकर दीर्घायु बनाती है। ३१ अथर्ववेद के एक सूक्त में बताया गया है कि दाक्षायण मणि (सुवर्णमणि) के धारण से मनुष्य दीर्घायु, शतायु, तेजस्वी और बलवान् होता है ३२ अथर्ववेद में उग्रौषधि (दर्भ, कुशा,) और दर्भ (कुशा,) मणि के धारण को दीर्घायुष्य का साधन बताया गया है।

वेदों में ओज, तेज, वर्चस् और ज्योति का वर्णन

चारों वेदों में ओज, तेज, वर्चस् और ज्योति का सैकड़ों मंत्रों में वर्णन हुआ है और इनकी प्राप्ति के लिए देवों से प्रार्थना की गई है।

सुश्रुत ने शरीरस्थ सभी धातुओं के उत्कृष्ट सार भाग (तेज) को 'ओज' कहा है। ओज के कारण ही मनुष्य में बल होता है। अतः बल को भी ओज कहते हैं। ओज के कारण मनुष्य में कार्य करने की शक्ति आती है और ज्ञानेन्द्रियाँ अपना काम उत्तम रीति से करती हैं। ओज का स्थान हृदय है, परन्तु वह रक्त के साथ सारे शरीर में व्याप्त होकर रहता है। ओज की स्थिति से शरीर की स्थिति है और ओज के क्षय होने से शरीर का नाश हो जाता है। ओज ही जीवन का आधार है। ३३

ऋग्वेद में अक्षय ओज की प्रार्थना की गई है।३४ ओज से मनुष्य उन्नति करता है ३५ सर्वश्रेष्ठ ओज और शक्ति हमें प्राप्त हो । ३६ प्रजा जनों में ओज और तेज हो ३७ तेज के कारण ही सूर्य-चन्द्रादि प्रकाशमान हैं। ३८ हम वर्चस्वी हों ३९ हमें तेज और महान् शक्ति प्राप्त हों । ४० मैं अमर ज्योति प्राप्त करूँ । ४१ विद्वान् अन्धकार को हटाकर ज्योति प्राप्त करता है । ४२ अश्विनी देवों ने मानव मात्र को ज्योति दी है। ४३

यजुर्वेद में अनेक मंत्रों में ओज, तेज आदि की प्रार्थना की गई है। इन्द्र ओज के कारण उन्नतिशील है। इन्द्र देवों में सबसे अधिक ओजस्वी है, मैं मनुष्यों में सबसे अधिक ओजस्वी होऊँ। ४४ अग्नि देवों में सबसे अधिक वर्चस्वी है, मैं मनुष्यों में सबसे अधिक वर्चस्वी होऊँ । ४५ सूर्य सबसे अधिक ज्योतिर्मय है, मैं मनुष्यों में सबसे अधिक ज्योतिर्मय होऊँ। ४६ हे ईश ! तुम ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों को तेजस्वी बनाओ । ४७ वर्चस्विता से मनुष्य

में कर्मठता और दक्षता आती है ४८ तेजस्विता मनुष्य की इन्द्रियों को पवित्र करती है। ४९ वर्चस् से आत्मिक शक्ति, ओज और दीर्घायु प्राप्त होती हैं। ५० वर्चस् से प्राण आदि शक्तियाँ, वाक्शक्ति, दर्शनशक्ति, श्रवणशक्ति, कर्मठता आदि प्राप्त होती हैं। ५१

सामवेद में अनेक मंत्रों में ओज और तेज की प्रार्थना है। अग्नि हमें वर्चस् और महान् शक्ति दे। ५२ इन्द्र हमें ज्ञान, तेज और स्थायी शक्ति दे। ५३ सोम हमें वर्चस्विता के लिए शक्ति, वेग और सौन्दर्य दे।५४ परमात्मा का श्रेष्ठ तेज हम हृदय में धारण करते हैं ५५ ओज की प्राप्त के लिए हम अग्नि को नमस्कार करते हैं। ५६ तेज से मनुष्य देव लोक तक पहुँच जाता है। ५७ परमात्मा हमें तेज और यश दे। ५८ उदार परमात्मा ज्योति देकर हमारी रक्षा करता है। ५९ परमात्मा हमें सदा ज्योति और आनन्द दे।६०

अथर्ववेद में भी अनेक मंत्रों में तेज और वर्चस् की प्रार्थना की गई है। मैं ब्रह्मवर्चस् से वर्चस्वी होऊँ। ६१ दिव्य जल हमें वर्चस् प्रदान करे। ६२ मैं तेज से तेजस्वी होऊँ ६३ अश्विनी देव मुझे वर्चस्, तेज, बल और ओज दें। ६४ सूर्य में जितना तेज है, उतना तेज मुझे प्राप्त हो। ६५ देवता ज्योति के कारण देवलोक को प्राप्त हुए ६६ पृथिवी हमें तेजस्वी और तीक्ष्ण शक्ति से युक्त करे। ६७ सूर्य, अग्नि और ब्राह्मण में जो तेज है, वह हमें प्राप्त हो। ६८ परमात्मा ओजरूप है, वह हमें ओज दे ६९ परमात्मा तेजरूप है, वह हमें तेज दे ७० हमें तेज, ज्ञान और दिव्य प्रकाश प्राप्त हो। ७१ तेज और कान्ति हमें कभी न छोड़े। ७२ अग्नि मेरे शरीर में ओज, वर्चस्, शक्ति और बल दे। ७३ तुम दिव्य ज्योति से प्रकाशित होओ ७४ हाथी के तेज के तुल्य हमारा महान् यश सर्वत्र फैले। ७५

वेदों में बल और शक्ति वृद्धि का वर्णन

चारों वेदों में अनेक मंत्रों में शारीरिक शक्ति की प्रार्थना की गई है और उसके साधनों का भी वर्णन है।

चरक ने शक्तिवर्धक तत्त्वों को रसायन कहा है। चरक का कथन है कि ब्रह्मचर्य या संयम सर्वोत्तम रसायन है। ७६ यह धर्म, यश, दीर्घायु और दोनों लोकों में हितकारी रसायन है। ७७ अष्टांगहृदय में बल और शक्ति के लिए इन गुणों को अपूर्व रसायन बताया है : सत्यभाषण, अक्रोध, आत्मचिन्तन, शान्तचित्तता और सदाचार। ७८

सुश्रुत ने जीवन बल, वर्ण और ओज का मूल कारण आहार माना है। आहार से ही शरीर की वृद्धि, बल, आरोग्य, वर्ण और इन्द्रियों की प्रसन्नता होती है। आहार की विषमता से अस्वास्थ्य एवं रोग होते हैं। ७९ भोजन के विषय में सुश्रुत ने कुछ उपयोगी नियम बताए हैं:- १. भूख होने पर ही भोजन करें, २. ठीकमात्रा में भोजन करें, ३. खूब चबाकर भोजन करें, ४. निश्चित समय पर भोजन करें, ५. हल्का, पौष्टिक, सरस एवं गर्म भोजन करें।८०

ऋग्वेद में बल और शक्ति की प्रार्थना के साथ ही उसके साधनों का भी उल्लेख है। यथा-

१. प्रातःकाल उठना- उषाकाल हमें बल और वीर्य दे। ८१

२. प्राण और अपानशक्ति को बढ़ाना अश्विनी हमें बल दे।८२ प्राण और अपानशक्ति का नाम अश्विनी है।

३. घृत का सेवन- घृत से अपनी शक्ति को बढ़ावें।८३

४. तेजस्विता के लिए शक्तिवृद्धि- हमें तेजोमय और सुखवर्धक शक्ति प्राप्त हो।८४

५. जल और दूध का सेवन- जल और दूध से शक्ति प्राप्त हो।८५

यजुर्वेद में अनेक मंत्रों में शक्ति की प्रार्थना है और कुछ उपायों का भी वर्णन है।

१. शुद्ध अन्न से शक्ति -गव्य पदार्थ अन्नरूप हैं, उनका भक्षण करें।८६

२. गोदुग्धादि से ऊर्जा-गव्य पदार्थ ऊर्जारूप हैं, उनके सेवन से ऊर्जा प्राप्त करें।८७

३. घृत-सेवन-घी से शरीर पुष्ट करें।८८

४. संयम और वीर्यरक्षा वीर्य अमृत है। वीर्यरक्षा से शक्ति बढ़ावें।८९

५. ज्ञानपूर्वक कर्म करना- वाग्देवी प्राणशक्ति के द्वारा शक्ति देती है।९०

सामवेद में कुछ मन्त्रों में बल और शक्ति की प्रार्थना है। इनमें कुछ साधन ये बताए हैं:-

१. आस्तिकता और उपासना-स्तुतिकर्ता को उत्तम शक्ति प्राप्त होती है।९१

२. अग्नि (जाठराग्नि) को प्रदीप्त करना -अग्नि प्रजा को शक्ति देता है।९२

३. प्राण और अपान से शक्ति-अश्विनी अर्थात् प्राण और अपानशक्ति मनुष्य को बल देती है।९३

४. सोमपान सोम हमें तेजोमय शक्ति दे।९४

५. उत्तम पुरुषार्थ- उत्तम पुरुषार्थी ही शक्ति प्राप्त करता है।९५

अथर्ववेद में अनेक मंत्रों में बल और शक्ति की प्रार्थना की गई है। कुछ उपाय ये बताए गए हैं:-

१. सूर्य किरणों से शक्ति-सूर्य देव हमें शक्ति दे।९६

२. प्राणायाम से शक्ति वायु हमें प्राण और अपान शक्ति दे।९७

३. सूर्य से नेत्रशक्ति सूर्य से नेत्रशक्ति और आकाश से श्रवणशक्ति प्राप्त करें।८

४. ईश-प्रार्थना हे ईश ! तुम बलरूप हो, हमें बल दो।९९

५. अग्नि से दिव्यशक्ति अग्नि में ३३ देवों का निवास है। अग्नि हमें सभी ३३ देवों की शक्ति दे ।१००

६. यज्ञोपवीत से त्रिविध शक्ति- यज्ञोपवीत के तीन धागों से आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों प्रकार की शक्ति हमें प्राप्त हो ।१०१

७. ज्ञान से वाक्शक्ति- सरस्वती से हमें वाक्शक्ति प्राप्त हो ।१०२

८. श्रम से बल-हमें शारीरिक बल प्राप्त हो ।१०३

९. पुरुषार्थ- पुरुषार्थ से हम सर्वथा नीरोग और पराक्रमी हों ।१०४

१०. मृत्यु के कारणों से बचना- हम मृत्यु के कारणों को दूर भगावें ।१०५

संदर्भ सूची –मुख्य ग्रंथ –

- वेदों मे आयुर्वेद-कपिल देव द्विवेदी
- समग्र विश्व को भारत का अनुदान –पं श्री राम शर्मा आचार्य
- स्मृति समुच्चय – पं श्री राम शर्मा आचार्य

१ . अथर्व० १. ६७. १ से ८, यजु० ३६.१६,२४

२ . त्र्यायुषं जमदनेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । यद् देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥ यजु० ३.६२

३ . सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम् । अथर्व० १७.१.२७

४ . अथर्व० १७.१. २७ से ३०

५. रजस्तनो मोप गाः । अ० ८.२.१

६. सत्यस्य हस्ताभ्याम् उदमुञ्चद् बृहस्पतिः । अ० ३.११.८

७. कृणोमि ते प्राणापानौ... दीर्घमायुः । अ० ८.२.११, २.२८.४, ३.११.५

८. अथर्व० २.२८.२

९. मा गतानामा दीधीथाः ० । अ० ८.१.८

१०. वातात् ते प्राणमविदं सूर्यात् चक्षुरहं तव । अ० ८.२.३, १४

११. सूर्यस्त्वा... मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः । अ० ५.३०.१५

१२. अग्नेष्टे प्राणम् अमृताद् आयुष्मतो वन्वे० । अ० ८.२.१३

१३. अपसिध्य दुरितं धत्तमायुः । अ० ८.२.७

१४. मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन् । अ० ८.१.१७

१५. अ० ८.१.१८

१६. अ० ८.१.२०

१७. शिवास्ते सन्त्वोषधयः ० । ... रक्षतां सूर्याचन्द्रमसावुभौ । अ० ८.२.१५

१८. आरोह तमसो ज्योतिः । अ० ८.१.८

१९. अरिष्टः .... शतहायन आत्मना भुजमश्नुताम् । अ० ८.२.८

२०. इन्द्रः .... विद्धो अग्र ऊर्जा स्वधामजराम्० । अ० २.२६.७

२१. अप्सु अन्तरमृतम् अप्सु भेषजम् । अ० १.४.४

२२ दाक्षायणा हिरण्यं.... दीर्घायुत्वाय शतशारदाय । अ० १.३५.१ दीर्घायुत्वाय... मणि... जंगिडं बिभृमो वयम् । अ० २.४.१

२३. अथर्व० ८.१.५ । ८.२. १३ और १४ ।

२४. अ० ८.१.८

२५. अ० ८.२.१ । २.२६.६

२६. तं ते सत्यस्य हस्ताभ्याम् उदमुञ्चद् बृहस्पतिः । अ० ३.११.८

२७. अ० ८.२. १८ और १६

२८. अ० २.२९.७

२९. अ० ६.४१.३ । ८.२.८

३०. अ० १.३०.३

३१. अ० ८.१.१७ । ८.२.५

३२. अ० १.३५. १ से ४

३३. तत्र रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत् परं तेजस्तत् खल्वोजः तदेव बलमित्युच्यते ।
सुश्रुत, सूत्र० १५. २४ से ३० ।

३४. ऋग्० ३.६२.५,

३५. ऋग्० ८.७६.१०

३६ . ऋग्० ६.१९ .६

३७. ऋग्० ६.४६.७

३८. ऋग्० १.६.१

३९. ऋग्० १.२३.२३

४०. ऋग्० ९.६६.२१

४१. ऋग्० २.२७.११,

४२. ऋग्० ३.३९.७

४३. ऋग्० १.९२.१७

४४. यजु० ८.३९

४५. यजु० ८.३८

४६. यजु० ८.४०

४७. यजु० १८.४८

४८. यजु० ७.२७

४९. यजु० १९.५
५०. यजु० ७.२८
५१. यजु० ७.२७
५२. साम० १५२०
५३. साम० ६२५
५४. साम० ८३४
५५. साम० १४६२
५६. साम० ११
५७. साम० ८७५
५८. साम० ६०२
५९. साम० १३५९
६०. साम० १०४८
६१. अथर्व० १७.१.२१
६२. अ० १०.५.७
६३. अ० १७.१.२०
६४. अ० ९.१.१७
६५. अ० ३.२२.४
६६. अ० ११.१.३७
६७. अ० १२.१.२१
६८. अ० ६.३८.१
६९. अ० २.१७.१
७०. अ० ७.८९.४
७१. अ० १६.८.१
७२. अ० १६.३.२
७३. अ० १९.३७.२.
७४. अ० २.६.१
७५. अ० ३.२२.१
७६. ब्रह्मचर्यम् आयुष्कराणां श्रेष्ठतमम्। चरक
७७. धर्म्य यशस्यमायुष्यं लोकद्वयरसायनम्।अनुमोदामहे ब्रह्मचर्यमेकान्तनिर्मलम्॥ अ०ह् उ०४०.४
७८. सत्यवादिनमक्रोधम् अध्यात्मप्रवणेन्द्रियम्।शान्तं सद्वृत्तनिरतं विद्याद् नित्यरसायनम्। अ०ह् उ० ३६.१७६
७९. प्राणिनां पुनर्मूलमाहारों बलवर्णौजसां च०। सुश्रुत, सूत्र० ४६.३
८०. काले सात्म्यं लघु त्रिग्धं, क्षिप्रमुष्णं द्रवोत्तरम्।बभुक्षितोऽन्नमश्नीयाद् मात्रावद् विदितागमः॥ सुश्रुत, सूत्र० ४६.४७१
८१. ऋग्० १.४८.१२
८२. ऋग्० ८.३५.१०
८३. ऋग्० १०५९.५
८४. ऋग्० ६.१०६.४
८५. ऋग्० १.६१.१८
८६. यजु० ३.२०
८७. यजु० ३.२०
८८. यजु० १२.४४
८९. यजु० १६.७६, २१.५५
९०. यजु० २०,८०
९१. साम० १३१२
९२. साम० १७३८
९३. साम० १७३६
९४. साम० १३२५
९५. साम० २३८
९६. अथर्व० ६.६१.१
९७. अथर्व० ५.१०.८.
९८. अधर्व० ५.१०.८
९९. अ० २.१७३
१०० अ० १६.३७.१
१०१. अ० ५.२८.३
१०२. अ० ५.१०.८
१०३. अ० ६.४.२०
१०४. अ० ५.३.५
१०५. अ० १२.२.३०

आदिवैदिककाल व वैदिककाल में सृष्टि रचना

डा. रेशु तिवारी
जयपुर

आदिवैदिककाल

भगवतगीता-(अ.7) में विज्ञान का अर्थ श्री शंकराचार्य द्वारा- 'स्वानुभवसंयुक्तम्' कहकर अपने स्वानुभव युक्त ज्ञान को विज्ञान कहा है। आचार्य श्री मधुसूदन ओझा जी द्वारा "दृष्टि के सामने आने वाले विभिन्न पदार्थों में समान रूप से मूलतः वर्तमान रहने वाले किसी एक तत्व का अनुभव ज्ञान कहलाता है।" मूल में एक स्थायी नित्य तत्व मानकर इसकी ही अंनत पदार्थों के रूप में परिणति का वर्णन 'विज्ञान' कहलाता है।

सृष्टि के मूल कारण के विषय में जानने की प्रवृतियां जिज्ञासा हेतू निरन्तर चिन्तन, मनन, प्रवाद, संवाद का परिणाम अद्वैत तत्वबोध रूप प्रस्तुत हुआ। इसकी सहज परिणति 'अहं ब्रह्मास्मि' के रूप में हुई।

अतिप्राचिन काल में प्रसिद्ध 'मणिजा' जाति में भी आर्योंके समान चार विभाग थे, साध्य, भास्वर, अनिल, तुषित। साध्यों में एक ब्रह्मा नाम के महान तपस्वी और तेजस्वी ऋषि हुए थे। उन्होने वैज्ञानिक त्रीलोकी के समान भूमण्डल पर भी त्रीलोकी बनायी। दिव्य स्वगलोक के समान भूमण्डल के उत्तरी दिशा में इन्द्र, वरूण, कुबेर आदि अलग-अलग देवताओं की पुरियां बनायी। जगतगुरू, स्वर्ग संदेश, इन्द्र विजय आदि में इसका इतिहास मिलता है। पांडवों का स्वर्गारोहण, अर्जुन का इन्द्रलोक जाना, स्वर्ग के लोकपाल कुबेर का युद्ध करना आदि अनेक उदाहरण प्राचिन ग्रन्थों में है।

महर्षि विश्वकर्मा सिद्धांत-

पूर्वकाल में महर्षि **विश्वकर्मा** ने स्वर्ग ओर पृथिवी की रचना के विषय में विचारक जनों के जिज्ञासात्मक प्रश्नों को प्रश्न पूछकर अपनी बुद्धि से निर्णय किया था।

किं स्विद् वनं क उस वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनिषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यद् यतिष्ठद् भुवनानि धारयन् ।। ऋगवेद- 10/81/4

विश्वकर्मा । ने कौनसे वन के किस वृक्ष द्वारा आकाश-पृथवी की रचना की? हे मेधावी जनों! तुम अपने ही मन से प्रश्न करो के वे विश्वकर्मा किस पदार्थ पर खडे होकर संसार को स्थिर करते हैं?

इसका उत्तर तेत्तिरीय बाह्मण में दिया गया है---

ब्रह्म वनं ब्रह्म स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनिषिणो मनसा विब्रवीमि वो ब्रह्माध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन् ।। तै. ब्रा. 2/8/9

ब्रह्म ही वन था, ब्रह्म ही वह वृक्ष था जिसमें से स्वर्ग और पृथवी विभक्त हुए हैं। हे तपस्वी विद्वद् गण में मनन् पूर्वक निश्चय करके दृढ़ता से कह रहा हूं कि सारे भुवनों को धारण करते हुए ब्रह्म ही इस सृष्टि का अध्यक्ष बनकर बैठा हैं।

दशवाद.........

सृष्टि के मूल कारण के विषय में जानने की प्रवृतियां जिज्ञासा हेतू निरन्तर चिन्तन, मनन, प्रवाद, संवाद का परिणाम अद्वैत तत्वबोध रूप प्रस्तुत हुआ। इसकी सहज परिणति 'अहं ब्रह्मास्मि' के रूप में हुई।

आर्चाय. मधुसूदन ओझा के अनुसार, अतिप्राचिन काल में प्रसिद्ध जाति मणिजा में भी आर्यों के समान चार विभाग थे, ज्ञानकल्प साध्य, अर्थ प्रधान आभास्वर, अल प्रधान महाराजिक / अनिल, शिल्प प्रधान तुषित। साध्य जाति के 12 विभाग, महाराजिकों के 220 भेद, आभास्वरों के 64 भेद थे। तुषितों के 36 विभाग थे। इतनी श्रेणीयों में विभक्त ये चारों समुदाय "मणिजा" कहलाते थे। इन चार जातियों को साध्यों में एक ब्रह्मा नाम के महान तपस्वी और तेजस्वी ऋषि हुए थे। उन्होने वैज्ञानिक त्रीलोकी के समान भूमण्डल पर भी त्रीलोकी बनायी। दिव्य स्वगलोक के समान भूमण्डल के उत्तरी दिशा में इन्द्र, वरूण, कुबेर आदि अलग-अलग देवताओं की पुरियां बनायी। जगतगुरू, स्वर्ग संदेश, इन्द्र विजय आदि में इसका इतिहास मिलता है। पांडवों का स्वर्गारोहण, अर्जुन का इन्द्रलोक जाना, स्वर्ग के लोकपाल कुबेर का युद्ध करना आदि अनेक उदाहरण प्राचीन ग्रन्थों में है।

आधिदैविक, आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक रूप में तीन त्रिलोकीयां हैं। इनमें **आधिदैविक** त्रिलोकीमें यह समस्तभूगोल या पृथ्वी पिण्ड भूलोक है। पृथ्विी से लेकर द्युलोक तक सारा भाग पृथ्वीलोक या भूलोक व अन्तरिक्षलोक है। सूर्य, चन्द्रादि ग्रह सामान्य रूप से तथा सूर्य पिण्ड की स्थिति वाला भाग विशेषरूप से द्युलोक है। यही रोदसी त्रिलोकी है। **आध्यात्मिक** त्रिलोकी में हम लोगों की देह है। हमारा सिर द्युलोक, पाद-पृथ्वीलोक

या भुलोक है, बीच का सम्पूर्ण देह भाग अन्तरिक्ष या भुवर्लोक है। तीसरा **अधिभैतिक** त्रिलोकी पार्थिव त्रिलोकी है। हिमालय के दक्षिण से दक्षिण महासागर तक भू या पृथ्वी भाग है, हिमालय के उत्तर से ध्रुव प्रदेश व उत्तरी महासागर तक सम्पूर्ण भू प्रदेश, स्वर्ग लोक है।

उस काल में जगत का मूल कारण जानने के प्रयास में महान ऋषियों द्वारा घोर चिन्तन-मनन के बाद अपने-अपने मत बतलाये जो "दशवाद" नाम से प्रसिद्ध हैं।

2. सृष्टि के मूलकारण अन्वेषण में स्वर्गस्थ देवताओं के दशमत-

1. सदसद्वाद
2. रजोवाद,
3. व्योमवाद,
4. अपरवाद,
5. आवरणवाद,
6. अम्भोवाद,
7. अमृतमृत्युवाद,
8. अहोरात्रवाद,
9. दैववाद,
10. संशयवाद।

1. कुछ कहते हैं सत् सृष्टि का मूल है, कोई असत् को मूल बतलाता है, किसी के मत में सत!, असत् दोनों सृष्टि का कारण है।

2. एक अमृत को मूल मान रहा है, दूसरा मृत्यु को मूल मान रहा है, दूसरा नित्य अनश्वर है व अनित्य नश्वर दोनों से सृष्टि हुई है।

3. अहोरात्र रूप काल को मूल मान रहा है।

4. चौथ माया को आवरण बतलाते हैं।

5. पांचवा जल को मूल मानते हैं।

6. रज कण को मूल मानते हैं, रज को शुक्ल-कृष्ण रूप में विभाग माने गये है।

7. सतवां आकाश को मूल माना है, परमव्योम व अपरव्योम दो भाग मानकर अपरव्याम से सृष्टि हुई मानते हैं।

8. अपर को केन्द्र मानकर रूक जाते हैं।

9. कोई देवताओं को कारण मानते हैं।

10. कोई संशय में याने सृष्टि कब हुई? कैसे हुई? किस रूप में हुई? आदि में संशय में ही रहे, इसे संशयवाद कहते हैं।

दशवादरहस्य का सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें सम्पूर्ण ब्रह्मविज्ञान समाहित है। ब्रह्मविज्ञान के तीन विभाग हैं, 1. विज्ञानेतिवृति, 2. दशवादी, 3. सिद्धांतवाद।

वैदिककाल

सृष्टि रचना से संबंधित तीन मुख्य सूक्त हैं। परम आदरणीय महान् ऋषियों ने अपनी गंभीर तप, सोच व मनन से जो जाना उसे मंत्रों में बतलाया । **नासदीय सूक्त, हिरण्यगर्भ सूक्त व पुरूष सूक्त** स्ष्टि रचना को बतलाते हैं। नासदीयसूक्त व हिरण्यगर्भ सूक्त दोनों दार्शनिक सूक्त हैं। जबकि पुरूषसूक्त सृष्टि रचना के क्रम को बतलाता है। कोई भी रचना जीवंत व विकासात्मक होने के लिये आवश्यक है कि उसमें **चेतना** याने **अनुभव करने** का भाव होवे। **चैतन्यतत्व** में ही विकास या परिवर्तन हो सकता है। इसी चेतन तत्व को **पुरूष** कहा गया है जिससे अनगिनत तत्वों की उत्पत्ति हुई है। ये तीनों सूक्त ऋगवेद के दसवें मण्डल के 90, 121, 129 सूक्त बड़े ही अदभूत व उच्च कोटी के दर्शन और वैज्ञानिक तथ्यों पर आधरित हैं। प्राचीन ऋषियों की सूक्ष्म परिक्षण, अध्ययन, विश्लेषण क्षमता व तर्क के अनुपम उदाहरण हैं। ये सभी सूक्त छंदों से छंदित है। सूक्त कई मंत्रों का समूह होता है जो एक ही विषय पर आधारित होते हैं।

3. नासदीय सूक्त.........

नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासीद् रजो नो व्योमा परो यत् ।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मान्नम्भः किमासीद् गहनं गंभीरम् । ११

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः ।२।
(अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेना ऽथा को वेद यत आबभूव ।६।)
अनीदवातं स्वध्या तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ।२।

तम आसीत् तमसा गूढ़मग्रेऽप्रकेतं सलिलंसर्वमा इदम् ।
तुच्छयेनाभ्वपिहितं यदासीत् तपसस्तन्महिनाऽजायतैकम् ।३।

कामस्तग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
सतो बन्धुमसति निाविनदन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ।४।

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासीउदुपरि स्विदासीउत् ।
रेतोधा आसन् महिमान आसन् स्वधा अवस्तात् प्रयति परस्तात् ।५।

को श्रृद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाऽथा को वेद यत आबभूव ।६।

इयं विसुष्टिर्यत आबभूव तदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमेन सो अङग् वेद यदि वा न वेद ।७। ऋ.वे. (१०/१२९)

इस सूक्त के रचियता ऋषि प्रजापति व देवता-भाववृतम्, त्रिष्टुप छंद में बतलाया गया है।

इन सभी सिद्धांतों को ब्रह्मा नामक ऋषि ने ऋगवेद नासदीय सूक्त (10/129) में एक-एक विचार कर, सृष्टि का आधार ब्रह्म को मानकर ब्रह्मभाव से ही इन दशवादों का समन्वय किया। इस सूक्त के प्रथम डेढ़ मंत्र में दशवादों में से आठ वादों का निषेधात्मक पद द्वारा खंडन किया गया। दूसरे मंत्र में 'अनीदवातम्' द्वारा क्रम से अंतिम दो वादों, देवतावाद संशयवाद को स्वीकृति दी। इसके पूर्वपक्ष में अनिर्णयवाद और निर्णयवाद, दोनों पक्षों का वर्णन किया। अंत में "आनीदवातम्" पक्ष सामने रखा। नासदीय सूक्त में एक ही मूल तत्व "आनित्" प्राणन् करने वाला बताया है। सत्कार्य वाद सिद्धांत के अनुसार पूर्ण ब्रह्म अपने भीतर पहले से ही वर्तमान जगत को बाहर प्रकट कर देता है।

प्रलयकाल में असत् नहीं था। सत् भी नहीं था। पृथ्वी आकाश भी नहीं थे। आकाश में स्थित सप्तलोक भी नहीं थे तब यहां कौन रहता था? ब्रह्ममाण्ड कहां था? गंभीर जल भी कहां था? ।1।

उस समय अमरत्व और मृतत्व भी नहीं था। रात्री और दिवस भी नहीं थे। वायु से शून्य ओर आत्मा के अवलंबन से श्वास प्रश्वास वाले एक ब्रह्म मात्र ही थे।।2। (अपने भीतर के जगत का बाहर प्रकाश करना ही प्राणन् कहलाता है)।

सृष्टि रचना से पूर्व अंधकार को आवृत किया हुआ था। सब कुछ अज्ञात था। सब ओर जल ही जल था। वह पुर्व व्याप्त ब्रह्म अविद्यमान पदार्थ से ढका था। वही एक तत्व तप के प्रभाव से विद्यमान था।।3। (इस मंत्र में 'प्राणन' को ब्रह्म की परा शक्ति 'स्वधया तदेकम्', स्वधा रूप में बतलाई है। यह स्वधा शक्ति ही प्रथम प्राण की हेतू है)।

उस ब्रह्म ने सर्वप्रथम सृष्टि रचना की इच्छा की। उससे सर्व प्रथम बीज का प्राकट्य हुआ। धाव जनों ने अपनी बुद्धि द्वारा विचार करके अप्रकट वस्तु की उत्पत्ति कल्पित की। 4। (ब्रह्मा सृष्टि रचनाकालकी आरंभिक अवस्था का संकेत कर रहें हैं, उस समय सर्वत्र अज्ञानाधंकार व्याप्त हो रहा था जैसे सागर में गहरे जल में डूबे पदार्थ का कोई पता नहीं लगता वैसे ही तम रूप अंधकार में सब कुछ छुपा हुआ है। निरूक्त, अनिरुक्त, अनुपाख्य कृष्ण काले वर्ण की अवस्थायें हैं। अनुपाख्यकृष्ण, अज्ञानअधंकार रूप तम का वही रूप है। अज्ञानके अर्थ में ही

तुच्छ और अम्भ का संकेत है। जिसका अर्थ ढंकना है। तीव्र तप के प्रभाव से जो तप अपनी महिमा से युक्त था, तप स्वंय ही तप रहा था जो चारों तरफ फैल रहा था, उससे अज्ञानांधकार नष्ट होकर एक ज्योर्तिमय अवस्था बनी, को ही आदि पुरूष या अव्ययपुरूष कहा गया। इस पुरूष में सर्व प्रथम आन्तिरिक काम उत्पन्न हुआ जिसको कामना रूप में जाना जाता है, जिसकी संज्ञा 'काम' है। मंत्र के काम को मन का प्रथम रेत-वीर्य बताया गया है। अव्ययपुरूष की पांच कलाओं में आनंद, विज्ञान, मन, प्राण और वाक् को काम जगत का विवरण दिया है। जगत रचना की इच्छा स्वधा शक्ति के परामर्श से जागी)। फिर बीज धारणकर्ता पुरूष की उत्पत्ति हुई। फिर महिमाऐं प्रकट हुई। उन महिमाओं का कार्य दोनों पार्श्वों तक प्रशस्त हुआ। नीचे स्वधा व ऊपर प्रयति का स्थान हुआ। ।5। (ये स्वतः प्रसूत तप की महिमा रश्मि तिरछे भाव से सवर्त्र फैल रहीं थीं। महिमा रूप, मन से प्रथम समुत्पन्न ज्योतिर्मय रश्मियां काम रूप रेत सवत्र फैलरहीं थीं। सवत्र व्याप्त होने वाली तपो महिमा व रेत का समुचित सीमा बधंन हेतु हमेशा स्वधा रूपमाया शक्ति साथ रहती है)।

प्रकृति के तत्व को कोई नहीं जानता तो उनका वर्णन कोई कर सकता है? सृष्टि की उत्पत्ति का कारण क्या है? विभिन्न सृष्टियां किस उपादान के कारण उत्पन्न हुई? देवगण भी इन सृष्टियों के पश्चात ही उत्पन्न हुए हैं, तब कौन जानता है कि ये सृष्टियां कहां से उत्पन्न हुई? 16। (कौन पूरे निश्चय से कह सकता है कि ये सृष्टि कहां से आविवर्भूत हुई? नाना भेद कैसे बने ? ऐसा कौनसा गुरू हुआ जिसने इसका प्रवचन किया हो? फिर भी इसके नाना भेद बन रहें हैं, इसको जाना या जाना ना सके याने बनना सहज नहीं है)।

यह विभिन्न सृष्टियां किस प्रकार हुई? इन्हे किसने रचा? इन सृष्टियों के जो स्वामी हैं, दिव्यधाम में निवास करते हैं। वही इनकी रचना के विषय में जानते हैं। यह भी संभव है कि उन्हें भी यह सब बातें ज्ञात न हों।।7। (इन्द्रियों की सहायता से यह ज्ञान नहीं हो सकता है कारण वह बाद में उत्पन्न हुआ है, तब यह ज्ञान तत्व साधकों द्वारा कैसे प्राप्त हुआ? ऐसा ज्ञान तो ईश्वर की कृपा से ही हो सकता है। जगत की विचित्राओं को देखकर प्रतीत होता है कि एक मात्र अध्यक्ष परम व्योममय अव्ययपुरूष ही अपनी स्वधा या माया शक्ति से ही इस पूरे रहस्य को जानता है या नहीं जानता है। जानना इसलिए चाहिये क्यों कि वह ज्ञानमय है। नहीं क्यों जानना चाहिये? क्यों कि स्वभावतः माया निरपेक्ष है)।

उपरोक्त मंत्रों के द्वारा सृष्टि विज्ञान का यह तत्व परम गंभीर है और साथ ही दुर्लभ भी है यह संकेत भी किया है।

काव्यशास्त्रे रसपदस्यानेकार्थत्वम्

डॉ. मनीषा शर्मा
सहायक आचार्या
जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

भारतीय साहित्यशास्त्रे रसम्प्रदायोऽस्ति नितरां प्राचीन इति न तिरोहितं विपश्चिन्महाभागानाम्। कर्त्तव्या काव्येषु रसा बुधैः इत्युक्त्वा आचार्यभरतेन रचनायां रसः सैव काव्यमिति निगदितम्। अयं रसः क इत्यत्र तत्वविदो वदन्ति -

चेतनाया विशिष्टा परिणतिर्हि रसः।

न स रसोऽनुभूतेः पृथक् कर्तुं शक्यो रसास्वादनार्थ सौन्दर्य बोधस्यापरिहार्यत्वात्। नाटकादिदर्शनात् काव्यस्य चाध्ययनात्। नाटकादिदर्शनात् काव्यस्य चाध्ययनात् श्रवणाद् वा रस आविर्भवति। तदा तत्र सौन्दर्य मानवः प्रेक्षते तस्य च स बोधं विदधाति तन्मानसे रसः सञ्चरितुभारमते। अध्यात्मवादिनो वदन्ति रसानुभूतेः सम्बन्ध आत्मना वा सहदयरसचेतनया सार्धमस्ति।

उपनिषद प्राचीनसंस्कृतसाहित्ये रसपदप्रयोगो विभिन्नेषु अर्थेषु दृश्यते वेद वेदाङ्ग ब्राह्मण आयुर्वेद रामायण महाभारतादिसाहित्ये रसपदप्रयोगे विभिन्नेषु अर्थेषु मनीषिभिः कृतः। कोषग्रन्थेषु रसपदस्य अर्थाः सन्ति।

आस्वादो जलं वीर्य शृङ्गारादिकाव्यरसाः विषं वः पारदो रागः गृहं धातुः तिक्तादयः षड्मोजनरसाः परमात्मा चेति।

''रसः स्वादे जले वीर्ये श्रृङ्गरादौ विषे द्रवे।
शब्दे रागे गृहे द्यातौ तिक्तादी पारदेऽपि च।''1

काव्येषु रसपदेन शृङ्गारादयो रसा अवबुध्यन्ते। आयुर्वेदसाहित्ये रसपदं मधुरादि भोजनरसान् विषं पारदादिधातून रसरूप शरीर धातुं द्रवत्वं च अभिव्यक्तं करोति। साररूपश्रच पदार्थाऽपि रसपदेनाऽभिधीयते। वैदिकसाहित्ये, विशेषतः परमात्माऽपि रसपदेन अभिव्यज्यते।

तैत्तिरीयोपनिषदि परब्रह्मरसपदेन व्यवहतं यतस्तवबध्वा जीव आनन्दमनुभवति।

''रसो वै सः। रसं सेवायं लब्वाऽऽनन्दीभवति।''2

शङ्कराचार्येण व्याख्यातम् यथा मधुरादिभिः लौकिकरसैः मनुष्या आनन्दमनुभवन्ति, तथैव परमात्मरूप रसमुपलभ्य योगिनोऽप्यानन्द लभन्ते। वैदिकसाहित्ये शृङ्गारादयः काव्यरसा अपि रसपदव्यवहृताः समुलभ्यन्ते। शृङ्गारहास्यादिरसपदवाच्यानां प्रयोगो वैदिकसाहित्ये विद्यते तानि च पदानि साहित्यिक मनोभावान् निर्दिशन्ति।

भरतस्तु स्वयं ब्रूते -

''नाट्यरचनायां सकला सामग्री ब्रह्मणा वेदेभ्यो गृहीता। विशेषेण रसान अथर्ववेदात् असी ग्रहीतवान्।

ज्ग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।।3

रसपदस्य निर्वचनम् अधोलिखितरूपेण विधीयते -

1. रस्यते आस्वाद्यते इति रसः। ये पदार्था आस्वाद्यन्ते ते रसाः। एवधाऽऽस्वाद्यमानाः पदार्था यैः परमात्ममधुरवस्तुसोमगन्धमध्वादि पदार्थाः रसपदव्यवहार्याः वर्तन्ते।
2. रस्यतेऽनेनेति रसः। यैः पदार्थैरास्वादनं विधीयते ते रसाः कथ्यन्ते। अतः शब्द राग वीर्य शरीरादयो रसाः कथ्यन्ते।
3. रसति रसयत्ति वेति रसः। व्याप्यते व्याप्नोति तत्वं तद् रसपदवाच्यं भवति। अतः पारदो जलं शरीरगतरसधातुः द्रव्यदार्थाश्च रसपदेन व्यवह्रियन्ते।
4. रसनं रस आस्वादः। आस्वादरूपः पदार्थो रसपदवाच्यो भवति। अतः शृङ्गारादीनि तत्र्यानि आस्वादरूपत्वाद् रसपदवाच्यानि भवन्ति।

उपर्युक्तनिर्वचनेषु प्रथमं चतुर्थ वा निर्वचनं साहित्यिकरसानभिव्यनक्ति। साहित्यरसा आस्वाद्यमाना आस्वादरूपा चा भवन्ति। रससिद्धान्तं काव्यानाञ्च रसात्मकत्वं प्रतिपादयितुं सम्प्राप्तेन कृतवान्। वाल्मीकिरामायणं प्रायशः प्रमाणत्वेन उदाह्रियते। तमसातीरं स्नातुं वाल्मीकिनाऽवलोकितः। व्याधः कश्चित् काममोहितं पक्षिणं क्रौञ्चं शरविद्धं शोणितपरीताङ्गो असौ पक्षी भूमौ पपात। तस्य प्रिया क्रौञ्ची विलपन्ती

वियति बभ्राम। घटनामिमावलोक्य शोकद्रवीभूतस्य महर्षेः शोक एव काव्यरूपेण परिणतः।

''मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।''4

आनन्दवर्धनेन स एव भावः काव्यात्मरूपेण प्रतिपादितः।

काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा।
क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः।5

स्वयमपि तेन महर्षिणा वाल्मीकिना स्वकाव्ये प्रतिपादितम्।

शोकार्तस्य तस्य कवेः असौ श्लोक एव काव्यरूपेण परिणतो नान्यथा भवितुमर्हीते।

शोकतिस्य प्रहन्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा।6

रसेनैतेन काव्यसृष्टिसम्भावना सञ्जाता। अथ च वाल्मीके इदं रामायणं काव्यं संस्कृतभाषायाः प्रथमम् आदिकाव्यमाभिधीयते। करुण रसप्रधानेऽप्यस्मिन् काव्ये शृङ्गार-हास्य वीर रोद्र वीभत्स अद्भुत भयानक शान्ताः सर्वेऽपि रसा अङ्गरूपेणाऽवतिष्ठन्ते। काव्यरसानामिदं स्वरूपमेव काव्यशास्त्राचार्यैः अखण्ड-स्वप्रकाशानन्दमय-चिन्मय वेद्यान्तरस्पर्शशून्यब्रह्मास्वादसहोदर लोकोन्तरचमत्कारप्राणरूपं व्याख्यातम्।

सन्दर्भग्रन्थसूची -

1. हेमकोषः
2. तैत्तिरीयोपनिषद् (2.7)
3. भरतनाट्यशास्त्रम् (1.17)
4. रामायणम् (1.2.15)
5. ध्वन्यालोक (1.4)
6. रामायणम् (1.2.40)

◆ ◆ ◆

राजगुरु रत्नाकर पौण्डरीक (महाशब्दे)

जयप्रकाश शर्मा
पाण्डुलिपि एवं लिपि विशेषज्ञ
उपनिदेशक - पद्मश्री नारायण दास संग्रहालय एवं पाण्डुलिपि शोध संस्थान, जयपुर

जयपुर के इतिहास ने जिन संस्कृत विद्वानों को शिखर महत्त्व का यश देकर अपना शिरोभूषण बना लिया है उनकी अग्रणी पंक्ति में दो नाम ऐसे आते हैं जो जयपुर बसने के साथ ही अमर हो गये। ये नाम हैं राजगुरु रत्नाकर पौण्डरीक और जगन्नाथ सम्राट । ये दोनों सवाई जयसिंह के राजगुरु थे, जयपुर निर्माण के प्रत्यक्षदर्शी थे और जयसिंह के सर्वोच्च आदर के पात्र होने के कारण जनजीवन के अभिन्न अंग बन गये थे। तभी तो इनका नाम जयपुर के नाम के साथ इतिहास से जुड़ गया है। सम्राट जी की हवेली और पुण्डरीक जी का बाग ब्रह्मपुरी में उस इतिहास के अवशेष हैं। पुरानी पीढ़ी को आज भी इन दोनों राजगुरुओं की अनेक किवंदितियाँ याद हैं। ये दोनों विद्वान् जयपुर बसने के प्रत्यक्षदर्शी विद्वानों की अग्र-पंक्ति में स्मरणीय होने के साथ-साथ संस्कृत के इतिहास में भी स्मरणीय हैं।

वेद, धर्मशास्त्र, तंत्रशास्त्र तथा विभिन्न विधाओं के ज्ञाता रत्नाकर दीक्षित महाराष्ट्र के महाशब्दे परिवार में जन्मे थे और सवाई जयसिंह द्वारा काशी से लाये गये थे। वैसे महाशब्दे परिवार देश का प्रसिद्ध परिवार होने के कारण पहले से ही आमेर के राजाओं द्वारा सम्मानित था। रामसिंह प्रथम देवभट्ट महाशब्दे का आदर करते थे किन्तु यह परिवार आमेर मे आकर नहीं बसा था। देवभट्ट का चौथा पुत्र रत्नाकर अद्भुत प्रतिभाशाली था। कहते हैं देवभट्ट की बड़ी बहन तंत्र शास्त्र की विदुषी और साधिका थीं तथा उन्हें चमत्कारी सिद्धियाँ प्राप्त थी। रत्नाकर को इनका स्नेह प्राप्त था। उन्होंने दीक्षा देकर रत्नाकर को तन्त्र का साधक भी बना दिया था। काशी में अपनी छोटी उम्र में ही जयसिंह ने इन्हें ध्यानमग्न देखा तो वे इनसे बहुत प्रभावित हुए। इनकी अवस्था भी अधिक नहीं थी। जयसिंह ने आग्रहपूर्वक रत्नाकर को आमेर में लाकर बसाया। नृसिंह जी के मन्दिर के पास एक हवेली उन्हें दी जो आज भी पुण्डरीक जी की हवेली कहलाती है। जयपुर उस समय तक नहीं बसा था। जब जयसिंह गद्दी पर बैठा तो उसने सभी वैदिक यज्ञ कर डालने की ठान ली। इन यज्ञों में अश्वमेध यज्ञ, राजसूय और वाजपेय बहुत प्रसिद्ध है जो अत्यन्त समृद्ध द्विजों, राजाओं या चक्रवर्तियों के ही करने के होते थे। वाजपेय या तो ब्राह्मण कर सकता है या क्षत्रिय। जयसिंह इन्हें करना चाहता था। कहते हैं उसका यज्ञोपवीत विधिवत नहीं होने के कारण वह वाजपेय नहीं कर सकता था क्योंकि वाजपेय सुसंस्कृत और विधिवत् उपनीत अत्यन्त समृद्ध ब्राह्मण या क्षत्रिय ही कर सकता था। जयसिंह का यज्ञोपवीत विधिवत उज्जैन में करवाया गया था किन्तु उससे पूर्व ही उसने रत्नाकर को गुरु बनाकर इतनी भू-सम्पत्ति और धन-सम्पत्ति उन्हें दे दी कि वे स्वयं राजा के समान समृद्ध हो गये। तब उनसे जयसिंह ने वाजपेय यज्ञ बड़ी धूमधाम से करवाया। यह यज्ञ श्याम बाग में (आमेर) हुआ जिसे आज परियों का बाग कहते हैं। संवत् 1765 में हुए इस यज्ञ के

समय जयसिंह 20 वर्ष के ही थे। इस यज्ञ का विस्तृत वर्णन राम विलास, जयसिह चरित, गुणदूत आदि अनेक काव्यों में मिलता है। इसके बाद रत्नाकर से पुण्डरीक यज्ञ करवाया गया। तभी से ये पौण्डरीक नाम से विख्यात हो गये। ये हो रत्नाकर महाशब्दे जयपुर की नींव रखे जाने के समय भी आचार्य थे और अश्वमेध यज्ञ के समय भी। अश्वमेध यज्ञ सवाई जयसिंह ने स्वयं किया जिससे उसकी ख्याति देश-देशान्तर में फैली। इस अवसर पर भी अपने गुरु रत्नाकर को जयसिंह ने बहुत बड़ी जागीर दी।

रत्नाकर जी के चमत्कारों के बारे में अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि जब नाहरगढ़ बन रहा था तो वहाँ आत्मा के रूप में स्व. नाहर सिंह भौमिया रहता था। वह अपने स्थान पर किला बनना पसन्द नहीं करता था तभी तो ज्यों ही एक दीवार बनती, रातों रात नष्ट हो जाती। इस समस्या के समाधान के लिए पुण्डरीक जी से प्रार्थना की गई उन्होंने अपनी साधना से मालूम कर लिया कि भौमिया नाहर सिंह का ही यह चमत्कार है। उन्होंने तंत्र विद्या से उसे प्रसन्न किया और कहा कि वे कृपा कर और कहीं जा बसें। इस पर नाहर सिंह ने इस शर्त पर वहाँ से हटने की बात मानी कि किला जो सुदर्शन गढ़ नाम से बनवाया जा रहा है वह उनके नाम पर नाहरगढ़ कहा जाय, उनके लिए अलग मन्दिर बनाया जाय, उसके बनने तक वे स्वयं पुण्डरीक जी के साथ रहेंगे जहाँ सदा उनकी सेवा होती रहेगी। ये सभी शर्तें मान ली गई। उनके लिए पुराने घाट की गूनी पर आमागढ़ के नीचे मन्दिर बनवाया गया। आज भी इनकी छतरियाँ नाहरगढ़ मैं, पुण्डरीक जी के बाग में और पुराना घाट की गूनी के पास स्थित हैं। ऐसी कथाएँ भी प्रचलित हैं कि राजा को जब भी कोई समस्या होती थी वह स्वयं इनके पास जाता था और महलों में वापिस लौटने से पूर्व ही वह समस्या हल हुई मिलती थी। कहते हैं जयसिंह इनका इतना आदर करता था कि वह अपने आपको इनका पुत्र मानता था। आयु में अधिक अन्तर नहीं होते हुए भी उसने पुत्र के कर्तव्य निभाये थे। बाद में किन्हीं कारणों से पुण्डरीक जी जयपुर छोड़ गये थे। कहते हैं कि ये बूंदी या करौली जाकर बस गये थे। उनकी मृत्यु के बाद जयसिंह ने पुत्र धर्म को पूर्णता देते हुए उनकी सम्पत्ति में से एक हिस्सा भी लिया था। उनके चार पुत्र थे। जयसिंह ने पांचवाँ पुत्र बनकर पाँचवां हिस्सा बंटाया किन्तु उसमें अपनी ओर से पर्याप्त धन मिलाकर अपने गुरु के नाम से जयगढ़ में रत्नाकर सागर बनवाया। यह तालाब आज भी उनकी याद दिलाता है। रत्नाकर महाशब्दे के नाम पर एक ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध हुआ है जिसका नाम है "जयसिंह कल्पद्रुम" । इसमें राजा के (अन्य गृहस्थों के भी) करने योग्य सभी श्रौत और स्मार्त धर्म कार्यो की विषि, व्यवस्था और निर्णय बताये गये हैं। धर्मशास्त्र का यह प्रन्थ राजा के लिए पुण्डरीक जी ने सब शास्त्रों का मंथन करके लिखा था जो प्रकाशित है। धर्मशास्त्र का अपनी ओर से संग्रह ग्रन्थ लिखवाने की यह परम्परा बड़े-बड़े राजाओं ने अपना रखी थी। मध्यप्रदेश के सुप्रथित राजा वीरसिंह जू देव के नाम पर जिस प्रकार 'वीर मित्रोदय' प्रसिद्ध हैं उसी प्रकार जयसिंह कत्पद्रुम भी जयपुर का प्रमुख धर्मग्रन्थ है। सुनते हैं बीकानेर के राजा गंगासिंह ने भी इसी परिपाटी पर 'गंगासिंह कल्पद्रुम' लिखवाया था। जयसिंह के नवरत्नों में प्रमुख रत्नाकर पौण्डरीक जयपुर के इतिहास में अमर हो गये हैं। तभी तो पुण्डरीक जी और सम्म्राट जी के स्मरण के बिना जयपुर का इतिहास पूरा नहीं हो सकता।

निर्जला एकादशी का महत्व

मोहित बिस्सा
बीकानेर

निर्जला एकादशी व्रत पौराणिक युगीन ऋषि-मुनियों द्वारा पंचतत्व के एक प्रमुख तत्व जल की महत्ता को निर्धारित करता है। ज्योतिषाचार्य मोहित बिस्सा के अनुसार जप, तप, योग, साधना, हवन, यज्ञ, व्रत, उपवास सभी अंतःकरण को पवित्र करने के साधन माने गए हैं, जिससे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर और राग-द्वेष से निवृत्ति पाई जा सके।

06 जून को निर्जला एकादशी है। इस दिन प्रातःकाल से लेकर दूसरे दिन की प्रातःकाल तक उपवास करने की अनुशंसा की गई है। दूसरे दिन जल कलश का विधिवत पूजन किया जाता है। तत्पश्चात कलश को दान में देने का विधान है। इसके बाद ही व्रती को जलपान, स्वल्पाहार, फलाहार या भोजन करने की अनुमति प्रदान की गई है। व्रत के दौरान ॐ नमो नारायण' या विष्णु भगवान का द्वादश अक्षरों का मंत्र 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' का सतत एवं निर्बाध जप करना चाहिए। भगवान की कृपा से व्रती सभी कर्मबंधनों से मुक्त हो जाता है और विष्णुधाम को जाता है, ऐसी धार्मिक मान्यता है।

एकादशी व्रत के धार्मिक व वैज्ञानिक फायदे

निर्जला एकादशी का महत्व.. प्रत्येक एकादशी को भगवान विष्णु की पूजा अराधना की जाती हैं। धार्मिक ग्रंथों के अनुसार निर्जला एकादशी बहुत ही विशेष है

जल संरक्षण एवं जल के महत्व को जानने की प्रयोगशला निर्जला एकादशी होती हैं। यदि निर्जला एकादशी को पूरे विधि-विधान से किया जाए तो मनुष्य को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति होती हैं। इस एकादशी पर गौ माता का दान देना, अन्न, छाता, जूते-चप्पल, आसन, वस्त्र, कमण्डलु तथा मिटटी के

कलश में पानी भरकर दान देना बहुत ही शुभ होता हैं तथा इन सभी वस्तुओं को दान देने से पुण्य फल की प्राप्ति होती हैं। निर्जला एकादशी का धार्मिक महत्व तो है ही इसके साथ- साथ इसका वैज्ञानिक महत्व भी हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार इस दिन निर्जला उपवास करने से

शरीर में नई ऊर्जा का प्रसार होता तथा मनुष्य अपने शरीर पर नियंत्रण बना में सक्षम होता हैं। ऐसा माना जाता हैं कि किसी व्यक्ति से गलती से एकादशी का भंग हो गया हो तो व्रत के भंग होने का भी निर्जला एकादशी का उपवास रखने हो जाता है।

विज्ञान के नजरिए से सर्वश्रेष्ठ है निर्जला एकादशी

हिन्दू वर्ष के बारह महीनों में हर माह के कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष में एक-एक एकादशी तिथि आती है। एकादशी का व्रत भगवान विष्णु की आराधना को समर्पित है। धार्मिक मान्यता है कि यह वत सभी दोषों और विकारों से छुटकारा देने वाला माना गया है। इस तरह यह इंसान के लिए आत्मरक्षक ही है। यह खासतौर पर वैष्णव व्रत है, किंतु विष्णु उपासक हर धर्मावलंबी इस व्रत को करता है। दरअसल, एकादशी व्रत मात्र धार्मिक नजरिए से ही नहीं बल्कि व्यावहारिक तौर पर भी मानसिक एवं शारीरिक पवित्रता के लिए भी अहम है। इसके कई फायदे हैं विज्ञान तो इसे बीमारियों के खिलाफ कारगर हथियार भी मान रहा है।

वैज्ञानिकों द्वारा की गई रिसर्च

जर्मनी के दो प्रतिष्ठित संस्थानों DZNE और हेल्महोल्ज सेंटर के साझा शोध में उपवास संबंधी कई जानकारियां सामने आयी हैं। वैज्ञानिकों ने चूहों के दो ग्रुप बनाये। एक को उपवास कराया और दूसरे को नहीं। भोजन के बीच में लंबा अंतराल रखना, यानि एक दिन उपवास रखते हुए सिर्फ पानी पीना। जिन चूहों को ऐसा कराया गया वे पांच फीसदी ज्यादा जिए।

वैज्ञानिक भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि मनुष्य शरीर में यदि जल की कमी आ जाए तो जीवन खतरे में पड़ जाता है। वर्तमान युग में जब जल की कमी की गंभीर चुनौतियां सारा संसार स्वीकार कर रहा है, जल को एक पेय के स्थान पर तत्व के रूप में पहचानना दार्शनिक धरातल पर जरूरी है। निर्जला व्रत में वती जल के कृत्रिम अभाव के बीच समय बिताता है। जल उपलब्ध होते हुए भी उसे ग्रहण न करने का संकल्प लेने और समयावधि के पश्चात जल ग्रहण करने से जल तत्व के बारे में व पंचभूतों के बारे में मनन प्रारंभ होता है। व्रत करने

वाला जल तत्व की महत्ता समझने लगता है।

नई पीढ़ी के लिए यह समझना जरूरी है कि अगर कोई इस व्रत को धर्म या ईश भक्ति की नजरिए से न करें, किंतु निरोग रहने में भी यह व्रत महत्वपूर्ण है। यह मन को संयम रखने के भाव सिखाता है। शरीर को नई ऊर्जा प्रदान करता है। इस व्रत से जुड़े वैज्ञानिक पहलू पर गौर करें तो चूंकि चन्द्रमा की कलाओं के घटने और बढ़ने का प्रभाव सभी प्राणियों और वनस्पतियों पर पड़ता है। हिन्दू धर्म पंचांग तिथियों पर आधारित होता है। हर तिथि पर चन्द्रमा की स्थिति सदा एक सी रहती है। इसलिए उसका असर भी शरीर पर वैसा ही पड़ता है। इसलिए सेहत के नजरिए से ऐसा माना जाता है कि चतुर्थी तिथि से एकादशी के बीच पैदा रोग गंभीर नहीं हो पाते। इस काल में पहले के रोग भी ठीक हो जाते हैं। हर मास में दो एकादशी होती है। इस तरह महीने में आने वाली 2 एकादशी तिथियों के दो दिन आहार संयम रखा जाए तो यह हमारी पाचन क्रिया को मजबूत बनाकर शरीर को सेहतमंद व मन को प्रसन्न रखता है।

उपवास एक औषधि है उपवास से जीवन लंबा हो सकता है। डायबिटीज और कैंसर जैसी बीमारियों का खतरा भी कम हो सकता है।

निर्जला या भीम एकादशी [ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी]

निर्जला और भीम एकदाशी की कथा -

पाण्डवों में भीमसेन शारीरिक शक्ति में सबसे बढ़-चढ़कर थे, उनके उदर में वृक नाम की अग्नि थी इसीलिये उन्हें वृकोदर भी कहा जाता है। वे जन्मजात शक्तिशाली तो थे ही, नागलोक में जाकर वहाँ के दस कुण्डों का रस पी लेने से उनमें दस हजार हाथियों के समान शक्ति हो गयी थी। इस रसपान के प्रभाव से उनकी भोजन पचाने की क्षमता और भूख भी बढ़ गयी थी। सभी पाण्डव तथा द्रौपदी एकादशियों का व्रत करते थे, परंतु भीम के लिये एकादशीव्रत दुष्कर थे। अतः व्यासजी ने उनसे ज्येष्ठमास के शुक्लपक्ष की एकादशी का व्रत निर्जल रहते हुए करने को कहा तथा बताया कि इसके प्रभाव से तुम्हें वर्षभर की एकादशियों के बराबर फल प्राप्त होगा। व्यासजी के आदेशानुसार भीमसेन ने इस एकादशी का व्रत किया। इसलिये यह एकादशी 'भीमसेनी एकादशी' के नाम से भी जानी जाती है।

◆◆◆

राष्ट्रोपनिषत्

रचयिता

स्व. आचार्य डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर विद्यालङ्कारः

(महामहिम–राष्ट्रपति–सम्मानित)

हिन्दी-रूपान्तरण-कर्त्री
सौ. श्रीमती इन्दु शर्मा
एम.ए., शिक्षाचार्या

अंग्रेजी-रूपान्तरण-कर्त्ता
महामण्डलेश्वरः स्वामी श्री ज्ञानेश्वरपुरी
विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थानम्, जयपुरम्

नित्यं रामायणं येन, पठ्यते पाठ्यते तथा ।
तस्मिन्नोत्पद्यते कश्चिद्, दुराचारः कदाचन ॥२५४॥

जो नित्य रामायण पढ़ता है तथा पढ़ाता है, उसमें कभी कोई दुराचार पैदा नहीं होता ।

Misbehaviour never arises in the one who always reads and teaches Ramayana.

नित्यं व्यायाम–कर्त्ता यो, हिताहारस्य सेवकः ।
शरीरे मनसि स्वस्थे, चिरं जीवति किं न सः ? ॥२५५॥

जो नित्य व्यायाम करने वाला और हित आहार का सेवक करने वाला है, क्या शरीर और मन में स्वस्थ रहता हुआ वह चिरं जीवी नहीं होता है ?

Doesn't the one live long who's body and mind are healthy because of constant exercise and a healthy diet?

निन्द्यं कर्म न कर्तव्यं, प्रात्साह्यश्च कदापि न ।
दण्डनीयस्तथा कर्त्ता, यथाऽन्योऽन्वेतु तं नहि ॥२५६॥

निन्दनीय कर्म नहीं करना चाहिये और निन्दनीय कर्म करने के लिये उसे कभी प्रोत्साहित भी नहीं करना चाहिये। उस प्रकार के निन्दनीय कर्म करने वाले को तो वैसा दण्ड दिया जाय जिसको देख कर कोई दूसरा उसका अनुसरण नहीं करे ।

Condemnable deeds should neither be done nor encouraged. The doer should be punished in such a way that nobody else would repeat them.

निराशा नैव कर्त्तव्या, परेशोऽस्ति सहायकः ।
कर्म कार्यं तमालम्ब्य, साफल्यँ लप्स्यते ध्रुवम् ॥२५७॥

निराशा नहीं करनी चाहिये । परमेश्वर सहायक है । उस परमेश्वर का सहारा लेकर कर्म करना चाहिये । निश्चित रूप से सफलता प्राप्त की जायेगी ।

One should not despair. God is the helper. Work should be done with the help of God, and success will surely follow.

निर्जीवेनापि देहेन, क्षुच्शान्तिर्यदि कस्यचित् ।
तर्हि तदीय–सार्थक्यं, ततोऽन्यन्नास्ति किञ्चन ॥२५८॥

यदि निर्जीव भी शरीर से किसी की क्षुधा–शान्ति हो जाती है, तो उससे अधिक अन्य कोई उस शरीर की सार्थकता नहीं है ।

If one's hunger is satisfied with the lifeless body, then there is no better use of that body.

निर्धना मत – दातारः, कार्याकार्ये न जानते ।
धनलोभादकार्यं ते, कृत्वा क्रीणन्त्यमङ्गलम् ॥२५९॥

निर्धन मतदाता कर्त्तव्याकर्त्तव्य को नहीं जानते । धन के लोभ से तो वे अकर्त्तव्य करके अमङ्गल खरीद लेते हैं ।

A poor voter does not differentiate between good and bad deeds. Due to greed for money he is unfortunately bought to do the bad deeds.

निर्माता चेद् असन्तुष्टो, विध्वंसकः स जायते ।
सुयशो लभते नूनम्, असन्तोष – निवारकः ॥२६०॥

यदि निर्माण–कर्त्ता को असन्तुष्ट कर दिया जाता है तो वह विध्वंसकारी बन बैठता है । असन्तोष का निवारण करने वाला निश्चित रूप से सुख प्राप्त करता है ।

The builder becomes subversive if made unhappy. Surely, happy is the one who prevents this grudge.

◆◆◆

विविध साहित्यिक गतिविधियाँ

ISSN : 2582-6360

पाण्डुलिपि लिप्यन्तरण प्रशिक्षण कार्यशाला

प्रकाशक : **विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान** - कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर

Website : vgda.in **Youtube :** www.youtube.com/c/vishwagurudeepashram **E-mail :** jaipur@yogaindailylife.org